दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय

गोरखपुर – 273009 (उ0प्र0) भारत

प्रमाण पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर के **कला संकाय** के अन्तर्गत डॉक्टर ऑफ फिलॉसफी उपाधि हेतु प्रस्तुत **"अठारहवीं शताब्दी में जाट–मराठा सम्बन्ध : एक अध्ययन"** शीर्षक शोध प्रबन्ध **श्री धीरेन्द्र कुमार राय** द्वारा मेरे निर्देशन में किया गया मौलिक शोध कार्य है। यह भी प्रमाणित किया जाता है कि –

– प्रस्तुत शोध प्रबन्ध शोधार्थी का अपना स्वयं का शोध कार्य है।

– प्रस्तुत शोध प्रबन्ध विश्वविद्यालय अनुदान आयोग विनियम–2009 के अनुरूप दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय के पी–एच0डी0 उपाधि अध्यादेश की सभी अपेक्षाओं को पूर्ण करता है।

शोध प्रबन्ध में प्रस्तुत कार्य विश्वविद्यालय में पंजीयन के बाद किया गया है।

निर्देशक

दिनांक ....

स्थान ....

(डॉ0 सुधाकर लाल श्रीवास्तव)
असिस्टेन्ट प्रोफेसर
इतिहास विभाग
दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय
गोरखपुर

दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय

गोरखपुर – 273009 (उ0प्र0) भारत

घोषणा

मैं एतद् द्वारा घोषित करता हूँ कि **"अठारहवीं शताब्दी में जाट–मराठा सम्बन्ध : एक अध्ययन"** शीर्षक प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध मेरा निजी एवं मौलिक कार्य है। यह शोध–प्रबन्ध या इसका कोई अंश किसी अन्य विश्वविद्यालय के किसी उपाधि या प्रमात्र पत्र हेतु प्रस्तुत नहीं किया गया है।

शोधार्थी

दिनांक : 31 जुलाई, 2015, गुरू पूर्णिमा

स्थान : गोरखपुर

(धीरेन्द्र कुमार राय)
इतिहास विभाग
दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय
गोरखपुर

दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय
गोरखपुर – 273009 (उ0प्र0) भारत

प्रमाण पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि **श्री धीरेन्द्र कुमार राय** पंजीकरण संख्या इतिहास, 2011–12, दिनांक 13.01.2012 शोध छात्र, दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर ने शोध अध्यादेश एवं विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के विनियम–2009 की शर्तो एवं अपेक्षाओं के अनुसार शोध–प्रविधि एवं कम्प्यूटर–शिक्षण का पाठ्यक्रम सफलतापूर्वक पूर्ण किया है।

अध्यक्ष

निर्देशक

जाट शक्ति के उदय के समय समकालीन परिस्थितियाँ

मुगल साम्राज्य, जिसे जहीरूद्दीन बाबर ने सन् 1526 ई0 में स्थापित किया था और जिसे सोलहवीं सदी के उत्तरार्द्ध में बादशाह अकबर ने अपने शासन काल के दौरान उसे शानो–शौकत की चर्मोत्कर्ष तक पहुचाँ दिया था, अपने आखिरी महान् बादशाह औरंगजेब के शासन काल के पश्चात् तेजी से पतन की ओर बढ़ने लगा। सत्रहवीं सदी के पूर्वार्द्ध तक उसकी राजधानी 'दिल्ली' पूरे पूर्वी गोलार्द्ध में एक प्रमुख सत्ता का केन्द्र मानी जाती थी, लेकिन आधी सदी के भीतर इस शक्तिशाली साम्राज्य के पतन के चिह्न असंदिग्ध रूप से परिलक्षित होने लगे।

अठारहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में मुगल साम्राज्य का पतन एवं विघटन तीव्र गति से हो रहा था। औरंगजेब का राज्यकाल मुगलों का सांध्य काल था। औरंगजेब की मृत्यु के पश्चात् आने वाले 52 वर्षों में आठ सम्राट दिल्ली के सिंहासन पर आरूढ़ हुए। ये सभी सम्राट प्रायः कमजोर, सत्ता–लोलुप एवं विलासी थे। दिल्ली दरबार ईरानी, तुरानी, भारतीय कई गुटों में बंटा हुआ था, जो परस्पर ईर्ष्या, द्वेष और राजनीतिक षड़यंत्रों में लगे रहते थे। फलतः भारत के भिन्न–भिन्न भागों में देशी और विदेशी शक्तियों ने अनेक छोटे–बड़े राज्य स्थापित किए। बंगाल, अवध और दक्कन आदि प्रदेश मुगल नियंत्रण से बाहर हो गए। उत्तर–पश्चिम की ओर से विदेशी आक्रमण होने लगे तथा विदेशी व्यापारी कम्पनियों ने भारत की राजनीति में हस्तक्षेप करना आरम्भ कर दिया। सन् 1737 ई0 में पेशवा बाजीराव प्रथम और सन् 1739 ई0 में नादिरशाह के दिल्ली पर आक्रमणों ने मुगल साम्राज्य के खोखलेपन की पोल खोल दी और

1740 ई0 तक मुगल साम्राज्य का पतन स्पष्ट हो गया था। अतः अठरहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में भारत की राजनीतिक दशा भारतीयों को उदास करती है और इतिहासकारों को उलझन में डालती है।

क्षेत्रीय शक्तियों का उदय :

अठारहवीं शताब्दी के प्रारम्भिक वर्षों में कमजोर सम्राट व दरबारी दलबंदी के कारण सन् 1761 ई0 तक मुगल साम्राज्य नामात्र के लिए साम्राज्य रह गया था, क्योंकि उसकी कमजोरियों के कारण स्थानीय शक्तियों ने स्वाधीनता के दावे करने लगे। फिर भी प्रतीक रूप में मुगल बादशाह की सत्ता जारी रही, क्योंकि अभी भी उसे राजनीतिक वैधता का स्रोत माना जाता था। नए राज्यों ने सीधे उसकी सत्ता को चुनौती नहीं दी और अपने शासन के औचित्य के लिए बराबर उसका अनुमोदन चाहते रहे। शासन के अनेक क्षेत्रों में इन राज्यों ने मुगल संस्थाओं और प्रशासन तंत्र को जारी रखा। परिवर्तन जहां आए, निश्चित ही, वहाँ वे अपेक्षाकृत धीरे–धीरे, क्षेत्रों में शक्ति के बदलते हुए सम्बन्धों को खपाते हुए आए, इसलिए अठारहवीं सदी में इन राज्यों का उदय राजव्यवस्था के पतन की बजाय उसका रूपान्तरण था। यह शक्ति के विकेन्द्रीकरण का सूचक था न कि शक्ति के शून्य या राजनीतिक अव्यवस्था का। ये नए राज्य विभिन्न प्रकार के थे और उनके अलग–अलग रूप थे; उनमें से कुछ की स्थापना मुगल सूबेदारों ने की, कुछ की मुगल साम्राज्य से विद्रोह करने वालों ने की; और जिन थोड़े से राज्यों ने अपनी स्वतंत्रता का दावा किया, वे वही थे जो पहले से स्वतंत्र मगर निर्भर राज्यों की तरह काम करते आ रहे थें।

मुगल सम्राट :

मार्च, 1707 ई0 में औरंगजेब की मृत्यु के उपरांत उसके पुत्रों में उत्तराधिकार के लिए युद्ध हुआ। 'मुहम्मद मुअज्जम' (शाह आलम), 'मुहम्मद आजम' और 'कामबख्श' में से सबसे बड़े पुत्र 'मुहम्मद मुअज्जम' की विजय हुई। उसने जाजौ (आगरा व धौलपुर के मध्य) के स्थान पर 18 जून, 1707 ई0 को आजम और हैदराबाद के समीप 13 जनवरी, 1707 ई0 को कामबख्श को हरा कर मार डाला और स्वयं बहादुरशाह प्रथम की उपाधि धारण कर सिंहासन पर बैठ गया।'[1] उस समय उसकी आयु 63 वर्ष की थी और वह एक सक्रिय नेता के रूप में कार्य नहीं कर सकता था। अपने शासन काल (1707 ई0–1712 ई0) में बहादुरशाह प्रथम का संघर्ष सिक्खों; जाटों, मराठों और राजपूतों से हुआ। गुरु गोविन्द सिंह की मृत्यु के पश्चात् पंजाब में बंदा बहादुर के नेतृत्व में संघर्ष हुआ। उसने सरहिंद के गवर्नर वजीर खां को मार दिया एवं सतलुज तथा यमुना के मध्य के क्षेत्रों पर सिक्ख आधिपत्य स्थापित किया। दिसम्बर, 1710 ई0 में लौहगढ़ पर मुगल सम्राट बहादुरशाह प्रथम ने अधिकार कर लिया, किन्तु सिक्खों का संघर्ष चलता रहा। इसी प्रकार बहादुरशाह प्रथम का आगरा के समीप जाटों से संघर्ष हुआ। यद्यपि बाद में बहादुरशाह प्रथम के जाट नेता चूड़ामन से सम्बन्ध मधुर हो गये किन्तु वह उनकी शक्ति को पूर्णतः नियंत्रित नहीं कर सका।

बहादुरशाह प्रथम का राजपूतों से तालमेल बना रहा। इस काल में मराठों में पुनः शक्ति संचय के प्रयत्न चल रहे थे। 'बहादुरशाह प्रथम' ने शम्भाजी के पुत्र शाहू को, जो मुगलों की कैद में था, जेल से मुक्त कर दिया,

परन्तु उसने शाहू को विधिवत् उत्तराधिकारी नहीं माना। राजाराम की पत्नी ताराबाई ने मराठों में उत्तराधिकार के प्रश्न को लेकर विवाद कर दिया। अतः इससे महाराष्ट्र में भी अशांति हो गई।[2] 'बहादुरशाह प्रथम की शासकीय दक्षता में कमी तथा राजकोष की रिक्तता के कारण साम्राज्य की दशा दयनीय हो गई थी।[3] 27 फरवरी, 1712 ई0 को बहादुरशाह की मृत्यु हो गई।

बहादुर शाह की मृत्यु के उपरांत उसके चारों पुत्रों में उत्तराधिकार का संघर्ष हुआ। सफलता जहाँदारशाह को प्राप्त हुई जो ईरानी दल के नेता जुल्फिकार खां की सहायता से सम्राट बना। जहाँदारशाह अत्यन्त अयोग्य तथा विलासी शासक था। जहाँदारशाह ने अपने अत्यल्प शासनकाल (मार्च 1712 ई0 से फरवरी, 1713 ई0) में शासन को सुचारू रूप से चलाने का प्रयास किया। उसने राजपूतों को प्रसन्न करने का प्रयास किया तथा जाट नेता चूड़ामन एवं छत्रसाल बुंदेला से भी मैत्री सम्बन्ध स्थापित किये। इसके साथ ही मराठा सरदार शाहू से भी मधुर सम्बन्ध बनाने के प्रयास किये; किन्तु उसमें उस शासकीय योग्यता का अभाव था, जिसकी पतन के दौर में आवश्यकता थी। एस0आर0 शर्मा ने लिखा है कि 'जहाँदारशाह के अल्प शासन काल में विलासता और हिंसा का दौर रहा। वह गवैयों; भाँडों, नर्तकों तथा तवायफों का युग था।'[4]

ऐसी स्थिति में जहाँदारशाह के भतीजे फर्रूखसियर ने सैय्यद बन्धुओं की मदद से जहाँदारशाह की हत्या करवा दी और स्वयं सम्राट बन गया। फर्रूखसियर के शासनकाल (1713ई–1719ई0) में सैय्यद बन्धुओं–अब्दुल्ला खाँ और हुसैन अली खाँ का राजनीतिक दबदबा रहा। वे साम्राज्य–निर्माता के रूप

में जाने गये। सैय्यद बन्धुओं ने मुगल शासन को मजबूत बनाने का प्रयास किया। इसके लिए उन्होंने राजपूतों, सिक्खों और जाटों से संघर्ष किया। फर्रूखसियर ने सैय्यद बन्धुओं के बढ़ते हुए प्रभाव को देखते हुए उन्हें ही मार्ग से हटाना चाहा, पर सैय्यद बन्धुओं ने फर्रूखसियर की अपमान जनक ढंग से हत्या करवा दी।

फर्रूखसियर के सिंहासन से उतारे जाने (28 फरवरी, सन् 1719 ई0) से लेकर मुहम्मदशाह के सिंहासनारूढ़ होने (24 सितम्बर, सन् 1719 ई0) तक दो राजकुमारों, रफी–उद्–दरजात और रफी–उद्–दौला को सिंहासन पर बैठाया गया। 'जो पानी के बुलबुले के भाँति उठे और अल्पकाल में ही अपने अस्तित्व को समाप्त कर बैठे।'[5]

सैय्यद बन्धुओं ने अब मुहम्मदशाह को सम्राट बनाया। किन्तु सैय्यद बन्धुओं के विरोधी नूरानी अमीरों के गुटों ने उनको ही मारने का षड्यंत्र किया। अक्टूबर, 1720 ई0 हुसैन अली खाँ का वध कर उसके बड़े भाई अब्दुल्ला खाँ को भी नवम्बर, 1720 ई0 में बंदी बना लिया गया। 1722 ई0 में कारागार में ही उसको जहर देकर मार दिया गया।

मुहम्मदशाह के शासन में मुगल साम्राज्य का पतन और तेजी से हुआ। एक–एक करके भारत के विभिन्न प्रदेशों में अर्धस्वतंत्र राज्यों का प्रादुर्भाव हुआ। दक्षिण में निजामुलमुल्क, अवध में सआदत खाँ और बंगाल, बिहार एवं उड़ीसा प्रांतों में मुर्शिद कुली खाँ ने ऐसे ही राज्यों की स्थापना की। इतना ही नहीं मार्च, 1737 ई0 में बाजी राव प्रथम केवल 500 घुड़सवार लेकर दिल्ली पर चढ़ आया। सम्राट डर कर भागने को उद्यत था। 1739 ई0 में नादिरशाह ने

भारत पर आक्रमण किया और मुगल साम्राज्य को औंधा और जख्मी बना कर छोड़ गया। नए मुगल सम्राट अहमदशाह (1748 ई0—54 ई0) और आलमगीर द्वितीय (1754 ई0—59 ई0) इतने निर्बल थे कि वे इस पतन को रोक नहीं सके। उत्तर—पश्चिम की ओर से अहमदशाह अब्दाली ने 1748 ई0, 1749 ई0, 1752 ई0, 1756 ई0—57 ई0 और 1759 ई0 में आक्रमण किए जिसके उपरान्त अधिकाधिक आक्रमण होता चला गया। शीघ्र ही पंजाब पठानों ने और मालवा व बुन्देलखण्ड मराठों ने छीन लिए तथा अन्य स्थानों पर भी आक्रमण किए गए। शाह आलम द्वितीय (1759 ई0—1806 ई0) और उसके उत्तराधिकारी केवल नाम मात्र के ही सम्राट थे वे अपने अमीरों, मराठों अथवा अंग्रेजों के हाथ की कठपुतलियाँ ही थे। 1803 ई0 में अंग्रेजों ने दिल्ली जीत ली। अंग्रेजों ने मुगल साम्राज्य का ढ़ोंग 1858 ई0 तक बनाए रखा जब तक कि अन्तिम मुगल सम्राट बहादुरशाह जफर को रंगून निर्वासित न कर दिया गया।

दरबार में दलबन्दी :

'अठारहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध की राजनीति में एक बहुत बुरी बात जो उभर कर सन्मुख आई, वह थी ऐसे शक्तिशाली सरदारों का उत्थान जो अब 'सम्राट—निर्माता' की भूमिका निभाने लगे थे।'[6] उत्तराधिकार के युद्ध तो मुगल काल के स्वर्ण—काल में भी होते थे जिनमें शक्तिशाली मनसबदार मुख्य लड़ने वालों का साथ देते थे परन्तु उत्तरकालीन मुगल काल में ये महत्वाकांक्षी अमीर और सरदार ही मुख्य भूमिका निभाने लगे थे और मुगल राजकुमार तो केवल शतरंज के मोहरे मात्र रह गये थे। सरदार लोग अपने स्वार्थ के लिए राजकुमारों को सिंहासन पर बैठा देते अथवा हटा देते। जहाँदरशाह अपनी

योग्यता एवं शक्ति से नहीं अपितु ईरानी दल के प्रमुख नेता जुल्फिकार खाँ के योग्य नेतृत्व के कारण सम्राट बना। इसी प्रकार फर्रूखसीयर को सैय्यद बन्धुओं ने ही 1713 ई0 में सिंहासन पर बैठाया और फिर जब 1719 ई0 में वह उनके लिए अनुपयोगी हो गया तो सिंहासन से उतार दिया। इसी क्रम में तीन कटपुतली सम्राट रफी–उद्–दरजात, रफी–उद्–दौला और मुहम्मदशाह को सैय्यद बन्धुओं ने सिंहासन पर बैठाया। 1720 ई0 में सैय्यद बन्धुओं का पतन इसलिए नहीं हुआ कि वे सम्राट का विश्वास खो बैठे थे बल्कि इसलिए कि निजामुलमुल्क और मुहम्मद अमीन खाँ के नेतृत्व में तुरानी दल अधिक शक्तिशाली हो गया था। इस प्रकार चारों ओर सत्ता हथियाने के प्रयास हो रहे थे। मुगल दरबार में दलबन्दी के विषय में इरविन महोदय ने लिखा है कि 'दरबार में बहुत से दल थे। इनमें चार प्रमुख थे, तूरानी, ईरानी, अफगानी और हिन्दुस्तानी। इनमें से पहले तीनों मध्य एशियाई, ईरानी और अफगान सैनिकों के वंशज थे। उनकी संख्या औरंगजेब के अन्तिम 25 वर्षों में बहुत बढ़ गयी थी, विशेष कर जब वह दक्षिण के युद्ध में व्यस्त था। इनके वंशज भारत के भिन्न–भिन्न भागों में सैनिक और असैनिक पदों पर नियुक्त थे। इनमें ऑक्सस नदी के पार वाले तूरानी, फारस और खुरासान के अफगान प्रायः सुन्नी थे और ईरानी अधिकतर शिया थे। इन मुगल अथवा विदेशी दल के विपरीत एक भारतीय दल था जिसमें वे लोग थे जिनके पूर्वज बहुत पीढ़ियों पहले भारत बस गये थे अथवा हिन्दू से मुसलमान बन गये थे; ये 'हिन्दुस्तानी' या 'हिन्दुस्तान–जा' कहलाते थे। इस दल को राजपूत, जाट और शक्तिशाली हिन्दू जमींदारों का समर्थन भी प्राप्त था।[7] इन परिस्थितियों में भारत में एक प्रकार से राजनैतिक शून्यता की स्थिति उत्पन्न हो गई जिससे महत्वाकांक्षी

सूबेदार व प्रादेशिक सरदारों को अर्द्ध स्वतंत्र राज्य बनाने की तथा पश्चिमोत्तर सीमा पार के साहसी वीरों को भारत पर पुनः आक्रमण करने की प्रेरणा मिली।

हैदराबाद :

हैदराबाद का स्वतंत्र राज्य सन् 1724 ई0 में शाही दरबार के एक शक्तिशाली कुलीन द्वारा स्थापित किया गया। यह कुलीन था चिनकुलिच खाँ, जिसने 'निजामुलमुल्क आसफजाह प्रथम' की उपाधि धारण की। उसे तूरानी गुट का नेता माना जाता था। वह दरबार की राजनीति में कुंठा का अनुभव करता था, क्योंकि सैय्यद भाइयों के नेतृत्व वाला भारतीय मुसलमानों का गुट गर्म दिमागी के साथ अपनी हस्ती जतलाता रहता था। इन सैय्यद भाइयों ने सन् 1719 ई0 में बादशाह फर्रूखसियर को मरवाकर कठपुतले के रूप में मुहम्मद शाह को तख्त पर बिठा दिया था। इस तरह से तैमूरी शासन को नष्ट होने से बचाने के लिए निजामुलमुल्क ने सैय्यदों के खिलाफ तूरानी और ईरानी कुलीनों को संगठित किया, और आखिर में वे सन् 1720 ई0 में हटाए व मार डाले गए, और मुहम्मद शाह को तख्त वापस दिलाया गया।

हैदराबाद के आसफजाही वंश के प्रवर्तक चिनकिलिच खाँ थे जिसे प्रायः निजामुलमुल्क भी कहा जाता था। 1708 ई0 में बहादुरशाह के औदार्य के कारण जुल्फिकार खाँ दक्षिण का वाइसराय बना। वह दक्षिण का कार्य अपने नायब दाऊद खाँ द्वारा चलाता रहा। 1713 ई0 में जुल्फिकार खाँ की मृत्यु के बाद चिनकिलिच खाँ सैय्यद बन्धुओं के प्रयास से दक्षिण का वाइसराय बना। दिल्ली दरबार के षड़यंत्रों के फलस्वरूप निजामुलमुल्क को 1715 ई0 में दक्षिण से वापिस बुला लिया गया और उसके स्थान पर सैय्यद हुसैन अली को ही

दक्षिण का वाइसराय नियुक्त किया गया। हुसैन अली के वध के पश्चात् चिनकिलिच खाँ का भाग्य पुनः चमका और वह दक्षिण का सूबेदार नियुक्त हो गया।

1722 ई0 में निजामुलमुल्क को दिल्ली में वजीर नियुक्त किया गया। उसने दिल्ली में सुव्यवस्था स्थापित करने का प्रयास किया किन्तु विरोधी दल व सम्राट ने उसके सभी प्रयास निष्फल कर दिये दुःखी होकर 1723 ई0 के अन्त में उसने शिकार अभियान के बहाने दक्षिण की ओर प्रस्थान किया। सम्राट मुहम्मदशाह को यह बहुत बुरा लगा। उसने मुबारिज खाँ को पूर्ण रूपेण दक्षिण का वाइसराय बना दिया और आज्ञा दी कि निजामुलमुल्क को जीवित अथवा मृत उपस्थित करें। निजामुलमुल्क मुबारिज खाँ से कहीं अधिक शक्तिशाली था। अक्टूबर, 1724 ई0 में शकूर खेड़ा के युद्ध में मुबारिज खाँ मारा गया और निजामुलमुल्क दक्षिण का स्वामी बन गया। सम्राट बेबस था और बाह्यरूपेण अपनी मर्यादा बनाए रखने के लिए उसने चिनकिलिच खाँ को दक्षिण का वाइसराय नियुक्त कर दिया और उसे 'आसफजाह' की उपाधि भी दे दी।

हैदराबाद की वास्तविक स्वतंत्रता का साल 1740 ई0 को माना जा सकता है जब स्थायी रूप से बसने के लिए निजाम ने उत्तर भारत को हमेशा के लिए छोड़ दिया। यहाँ आकर उसने उद्दंड जमींदारों को वश में किया और हिन्दुओं के प्रति सहिष्णुता दिखाई, जिनके हाथों में आर्थिक शक्ति थी। फलस्वरूप हैदराबाद में एक नए क्षेत्रीय कुलीन वर्ग का जन्म हुआ जो निजाम का समर्थक था। 1748 ई0 में उसकी मृत्यु के समय तक हैदराबाद राज्य दकनी राजनीति की एक सुमाय शक्ति बन चुका था और वह मुगलों की

अधिराजी को प्रतीक रूप में ही स्वीकार करता था। सिक्के अभी भी मुगल बादशाह के नाम से ढ़ाले जा रहे थे; जुमा की नमाज के बाद खुत्बे में भी उसका नाम लिया जाता था। लेकिन सभी व्यावहारिक दृष्टियों से निजाम स्वतंत्र कामकाज करने लगा था बादशाह से कोई जिक्र किए बिना वह लड़ाइयाँ लड़ता, समझौतों पर हस्ताक्षर करता, मनसब देता और महत्वपूर्ण नियुक्तियाँ करता था।[8]

निजामुलमुल्क के दक्षिण जाने से मुगल साम्राज्य की स्थिति और भी बद्तर हो गई। 1737 ई0 में सम्राट ने उसे पुनः दिल्ली बुलाया और मराठों के विरूद्ध युद्ध के लिए भेजा किन्तु पेशवा बाजीराव ने उसको परास्त कर दिया। इसके पश्चात् उसने सम्राट के साथ नादिरशाह के विरूद्ध करनाल के युद्ध में भाग लिया। नादिरशाह के वापस जाने के बाद निजामुलमुल्क दक्षिण चला गया। निजामुलमुल्क की मृत्यु के पश्चात् हैदराबाद राज्य भी परस्पर पारिवारिक संघर्ष और कर्नाटक के प्रश्न पर अंग्रेजों और फ्रांसीसी कूटनीति का शिकार हो गया। यह संघर्ष तब तक चलता रहा जब तक निजामुलमुल्क ने अंग्रेजों से सहायक संधि नहीं कर ली।

अवध :

अठारहवीं सदी में स्वतंत्र होने वाला एक और मुगल सूबा था अवध। अवध के स्वतंत्र राज्य का संस्थापक 'मीर मुहम्मद अमीन सआदत खाँ बुरहानुलमुल्क' था। सआदत खाँ शिया था और निशापुर के सैय्यदों का वंशज था। 1720 ई0 में वह बयाना का फौजदार नियुक्त किया गया। उसने सैय्यद बन्धुओं के विरूद्ध षड़यंत्र में भाग लिया और सम्राट की दृष्टि में ऊपर उठ

गया। फलस्वरूप पहले उसे पाँच हजारी फिर सात हजारी का मनसब मिला और बुरहानुलमुल्क की उपाधि भी मिली। 1720 ई0 से 1722 ई0 तक वह आगरा का गर्वनर रहा जिसका शासन उसने अपने नायब नीलकण्ठ नागर के द्वारा चलाया। इस समय भरतपुर के जाटों ने आगरा व मथुरा जिलों के अपने जाति–भाईयों से मिलकर विद्रोह कर दिया। सआदत खाँ ने उन पर चढ़ाई की उनके चार दुर्ग विजित कर लिए। परन्तु इस सफलता के बाद वह आगे नही बढ़ सका क्योंकि उसको दरबार में बुलाकर मारवाड़ के महाराजा अजीत सिंह पर आक्रमण करने का आदेश दिया गया। महाराजा अजीत सिंह सैय्यद बन्धुओं का पक्षपाती था उनका बदला लेने के लिए मुस्लिम विरोधी नीति का अनुसरण करने लगा और शाही दरबार का शत्रु बन गया। दरबार में अन्य अमीरों ने संघर्ष पूर्ण चढ़ाई के प्रति अनिच्छा प्रकट की और तब विशिष्ट स्थिति के लिए सआदत खाँ ने इस सुअवसर का स्वागत किया। किन्तु उसके दुर्भाग्य से दरबारियों के विरोध के कारण यह प्रस्ताव स्वीकृत न हो सका। उसकी अनुपस्थिति का जाटों ने लाभ उठाया जिससे स्थिति नियंत्रण से बाहर हो गई। जाटों के दमन के लिए प्रयास करते हुए उसका नायब नीलकण्ठ नागर मारा गया। इस बदले घटनाक्रम में सआदत खाँ को जाटों के साथ एक बार पुनः स्वयं युद्ध करना पड़ा। किन्तु उसे सफलता प्राप्त नहीं हुई। फलतः आगरा की सूबेदारी 11 सितम्बर, 1722 ई0 को जयपुर के राजा जयसिंह कछवाहा को दे दी गयी; क्योंकि राजा जयसिंह ने यह प्रस्ताव रखा था कि यदि आगरा की सूबेदारी उसको दे दी जायेगी तो वह जाटों के विरूद्ध चढ़ाई कर उनका दमन कर देगा। जाटों के विरूद्ध सफल न होने पर सम्राट ने सआदत खाँ के प्रति

और भी अप्रसन्नता प्रकट की और उससे मिलने से इन्कार कर दिया तथा उसको आदेश दिया कि वह तुरन्त अवध के लिए रवाना हो जाए।

9 सितम्बर, 1722 ई0 वस्तुतः इस तारीख से ही अवध के स्वतंत्र मुस्लिम राज्य का इतिहास प्रारम्भ होता है। '1722 में सआदत खाँ को अवध का सुबेदार नियुक्त किया गया और उसे स्थानीय राजाओं और सरदारों के विद्रोहों को कुचलने का कठिन दायित्व सौंपा गया।'[9] साल भर में उसने यह काम पुरा कर लिया और प्रशंसास्वरूप बादशाह मुहम्मदशाह ने उसे बुरहानुलमुल्क की उपाधि प्रदान की। इसके बाद सआदत खाँ सरकारी शाही दरबार में अपनी स्थिति को मजबूत बनाने के लिए राजधानी लौटा, पर मुहम्मद शाह के एक चहेते से झगड़ा कर बैठा और उसे फिर अवध लौटने के लिए मजबूर कर दिया गया। दरबारी राजनीति से कुंठित होकर सआदत खाँ ने अवध में अपनी शक्ति का आधार बनाने का फैसला किया और पहले कदम के रूप में उसने अपने दामाद सफदरजंग को बादशाह से अपना नायब सुबेदार मनवा लिया। अपने खानदानी शासन की स्थापना की ओर उसका दूसरा कदम दीवान के पद को शाही नियंत्रण से लगभग स्वतंत्र बना लेना था। उसके बाद अवध के राजस्व को एक पंजाबी खत्री अधिकारी के हवाले कर दिया गया, जो सआदत खाँ के अन्तर्गत काम करता था और कभी शाही दरबार को कोई खबर नहीं भेजता था।

अवध में उद्दंड जमींदारों की समस्या भी कालांतर में हल कर ली गई और मालगुजारी का एक नया बंदोबस्त किया गया, जिसमें राजस्व की मांग डेढ़गुनी हो गई। जागीरदारी प्रथा में सुधार किया गया और जागीरें स्थानीय

कुलीनों को दे दी गई, जबकि व्यापार के एक समृद्धकारी प्रवाह से सूबा समृद्ध बना रहा। इसके कारण 'एक नया क्षेत्रीय शासक कुलीन वर्ग पैदा हुआ, जो मुख्यतः भारतीय मुसलमानों, अफगानों और हिन्दुओं पर आधारित था और ये सब सआदत खाँ के प्रमुख समर्थक बन गए'[10] पर सआदत खाँ ने शाही दरबार के साथ अपना संवाद सूत्र बनाए रखा। वास्तव में इस पूरे काल में उसने अवध की सीमाओं को बराबर फैलाया, पर ऐसा बादशाह की औपचाकि स्वीकृति के बिना कभी नहीं किया। वह दरबार की राजनीति में अपनी पुरानी महत्वाकांक्षाओं को भी हवा देता रहा, लेकिन 1739–40 ई0 में वह फिर एक बार कुंठा का शिकार हुआ जब मीरबख्शी (शाही खजांची) का पद निजाम को दे दिया गया, बावजूद इसके कि फारस के राजा नादिरशाह के हमले के दौरान भी उसने अपनी सेवाएं दी थी। उसने इसे धोखा माना और प्रतिशोध के लिए पाला बदलकर फारसी हमलावर की ओर हो गया। लेकिन वह नादिरशाह के दम और गर्म दिमागी को नहीं झेल सका और दिल्ली पर अधिकार के अगले दिन घोर कुंठा और हताशा में उसने जहर खा लिया।

1740 ई0 में अपनी मौत के समय तक सआदत खाँ अवध में निश्चित रूप से एक अर्धस्वतंत्र क्षेत्रीय राजनीतिक व्यवस्था विकसित कर चुका था, जिसकी मुगल राजसत्ता के प्रति वित्तीय प्रतिबद्धता पहले से बहुत ही कम थी, पर औपचारिक सम्बन्ध विच्छेद नहीं हुआ था। उसे पुत्र नहीं था। उसने अपनी पुत्री का विवाह अपने भतीजे सफदरजंग के साथ कर दिया था और इसी कारण यह उसका उत्तराधिकारी बना। नादिरशाह केवल दो माह तक भारत का बादशाह रहा और उसने सफदरजंग से पेशकश के रूप में दो करोड़ रूपये

स्वीकार करके अवध में उत्तराधिकार का प्रश्न हल कर दिया। बाद में मुहम्मद शाह ने इस नियुक्ति की पुष्टि की और उसे एक शाही उपाधि प्रदान की। पर सफदरजंग के लिए अवसर वास्तव में तब आए, जब 1748 में मुहम्मद शाह और निजामुलमुल्क दोनों की मृत्यु हो गई और नए बादशाह अहमदशाह ने उसे वजीर नियुक्त किया। इस नए पद का उपयोग करके सफदरजंग ने अपना प्रभाव क्षेत्र का विस्तार किया। पठानों से फर्रूखाबाद का छीना जाना इन लाभों में सबसे महत्वपूर्ण था लेकिन दूसरी ओर वजीर की स्वार्थसिद्धि की इस मुहिम ने शाही परिवार को भी विमुख कर दिया और दरबारी कुलीनों को भी, जिन्होंने षड़यंत्र करके आखिरकार उसे 1753 ई0 में निकलवा दिया। जैसा कि रिचर्ड बार्नेट कहते है, ''सिकुड़ रहे साम्राज्य के बचे–खुचे भाग से अवध और इलाहाबाद के सुस्पष्ट अलगाव के कारण वह साल उत्तर भारत के राजनीतिक इतिहास का एक महत्वपूर्ण मोड़ था।''[11] औपचारिक सम्बन्ध अभी पूरी तरह टूटा नही था। सन् 1754 ई0 के अन्तिम महीनों में सफदरजंग की मृत्यु के बाद फिर उसके ही एक मात्र पुत्र शुजाउद्दौला को कठपुतले बादशाह आलमगीर द्वितीय द्वारा अवध का सुबेदार नियुक्त किया गया। शुजा ने भी मुगल बादशाह की प्रतीकात्मक सत्ता की कभी औपचारिक अवज्ञा किए बिना सूबा अवध की स्वतंत्रता को सफलता के साथ जारी रखा। आलमगीर द्वितीय की मृत्यु के बाद सितम्बर 1759 ई0 में जब भगोड़ शाहजादे ने शाह आलम द्वितीय के रूप में अपना राजतिलक कराया तो उसने शुजा को अपना वजीर बनाया। हालांकि यह पद नामात्र का था, पर शुजा ने अपने क्षेत्र में अपनी शक्ति को बनाए रखा और जब पानीपत की तीसरी लड़ाई (1761) में मराठों

को उलझाने के लिए अहमदशाह अब्दाली फिर भारत में आया तब दोनों पक्षों ने शुजा को अपना सहयोगी बनाने की जीतोड़ कोशिश की।

शुजाउद्दौला अपने स्थानीय विरोधियों अर्थात् मराठों को धूल चटाने और कमजोर होता देखने के लिए अफगान आक्रमण का साथ दिया; लेकिन इस पूरे टकराव के दौरान बराबरी के एक गठबंधन में एक स्वतंत्र सहयोगी की तरह व्यवहार करता रहा। उसके अपने क्षेत्र अवध और इलाहाबाद में उसकी स्वायत्तता और शक्ति को 1764 ई0 में अंग्रेज ईस्ट इण्डिया कम्पनी के साथ उसके टकराव तक कोई चुनौती नहीं मिली। सन् 1748 में सम्राट मुहम्मदशाह के आदेश से सफदरजंग को वजीर नियुक्त किया गया था और तभी से उसके उत्तराधिकारी प्रायः नायब वजीर कहलाने लगे।'[12] यह स्थिति 1819 ई0 तक बनी रही, इस वंश के सातवे शासक सआदत खाँ ने अवध के राजा की उपाधि धारण कर ली।

रूहेलखण्ड :

अठारहवीं सदी के पूर्वार्द्ध उत्तर भारत में बड़ी संख्या में अफगानों का आना पुनः शुरू हो गया और विभिन्न स्थानों पर वे सेना में नौकरी करने लगे। पश्चिम में दिल्ली और आगरा के मध्य तथा पूर्व में अवध और इलाहाबाद के मध्य उनकी अच्छी खासी संख्या निवास करने लगी। उनकी हिन्दुस्तानी बस्ती जिसे पहले कटिहार के नाम से जाना जाता था अब रूहेलखण्ड के नाम से प्रसिद्ध हो गयी क्योंकि मुख्य रूप से वहाँ रूहेले रहते थे। 'रूहेलों को सर्वप्रथम एक प्रतिभाशाली एवं भाग्य का धनी अफगानी सैनिक के अधीन महत्व प्राप्त हुआ जो कंधार से आया था। उसने और उसके साथियों ने पहले जमींदारों

और उसके बाद शाही गवर्नर की नौकरी की। इसके पश्चात दाऊद खाँ ने बरेली में एक छोटी सी जागीर की नींव स्थापित की।'[13] 1721 ई0 में दाऊद खाँ की मृत्यु होने पर उसके पुत्र अली मुहम्मद रूहेला ने अपने पिता की योजनाओं को आगे बढ़ाया। उसने अपनी निजी सेना खड़ी करने में सफलता प्राप्त की, तत्पश्चात् उसने मुगल बादशाह के सिपहसालार ख्वाजा साहिब को पराजित किया और उसकी सारी सम्पत्ति छीन ली। इससे उसकी प्रतिष्ठा में वृद्धि हुई। उसने नवाब का खिताब ग्रहण कर लिया तथा दरबार लगाना शुरू कर दिया।

नादिरशाह के आक्रमण का मुगल साम्राज्य पर बुरा प्रभाव पडा; जिससे अली मुहम्मद को अपना राज्य सम्पूर्ण बरेली, मुरादाबाद, हरदोई तथा बदायूँ के कुछ हिस्सों तक विस्तृत करने का अवसर प्राप्त हुआ। मुगल बादशाह ने उसे कटिहार का गवर्नर बना दिया। कुछ समय पश्चात् उसने पीलीभीत, बिजनौर और कुमायूँ पर भी अधिकार कर लिया। अली मुहम्मद की बढ़ती शक्ति के विरूद्ध 1745 ई0 में मुगल सम्राट मुहम्मदशाह ने सफदरजंग को भेजा। किन्तु उसे कोई बड़ी सफलता प्राप्त नहीं हुई। फलतः मुहम्मद शाह ने अली मुहम्मद के साथ समझौता कर लिया और उसे 4,000 का मनसबदार बना दिया साथ ही सरहिन्द का मुगल फौजदार बना कर उसे वहाँ भेज दिया गया। अहमदशाह अब्दाली के दिल्ली पर आक्रमण की सूचना पाकर अली मुहम्मद अपनी सैनिक टुकड़ी के साथ रूहेलखण्ड वापस चला गया और पुनः रूहेलखण्ड में अपनी स्वतंत्र सत्ता कायम की। इस प्रकार रूहेलखण्ड में भी मुगल साम्राज्य का आधिपत्य समाप्त हो गया।

फर्रूखाबाद :

मुहम्मद खाँ बंगश ने जो एक साहसी अफगान था, मुगल सम्राट फर्रूखसियर और मुहम्मद के शासनकाल में अलीगढ़ और कानपुर के मध्य फर्रूखाबाद के चारों ओर के इलाके पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया। मुहम्मद खाँ ने अफगानों का एक शक्तिशाली जत्था तैयार किया जिसका प्रयोग प्रारम्भ में उसने लूटमार करने वाले हमलों और स्थानीय जागीरदारों की लड़ाईयाँ धन लेकर लड़ने के लिए किया। सन् 1713 ई0 में मुगल सम्राट फर्रूखसियर ने उसे दरबारी के रूप में नियुक्त किया। इससे उसकी प्रतिष्ठा में अत्यधिक वृद्धि हुई। सन् 1714 ई0 में उसने फर्रूखाबाद नगर की नींव डाली। धीरे–धीरे उसने अपनी योग्यता व सैनिक बल के आधार पर बहुत बड़ी जागीर अर्जित कर ली। उसका प्रभाव इतना अधिक हो गया था कि उसे इलाहाबाद एवं मालवा का गवर्नर नियुक्त कर दिया गया। 1743 ई0 में मुहम्मद खाँ बंगश की मृत्यु हो गई तो उसका पुत्र कायम खाँ उसका उत्तराधिकारी बना। इस प्रकार अठारहवीं सदी के पूर्वार्द्ध में फर्रूखाबाद नामक एक नयी जागीर विकसित हो गई।

बुन्देलखण्ड :

अठारहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में छत्रसाल का बुन्देलखण्ड पर आधिपत्य था। छत्रसाल ने प्रारम्भ में मुगल विरोध की नीति अपनायी। किन्तु 1699 ई0 में शेर अफगान ने छत्रसाल को पराजित कर दिया। कुछ समय पश्चात् छत्रसाल मुगल सेना में चला गया। 1705 ई0 छत्रसाल 4,000 का मनसबदार बन गया। औरंगजेब की मृत्यु के पश्चात् छत्रसाल पुनः बुन्देलखण्ड लौट गया। 1708 ई0

में छत्रसाल के पुत्र मुगल सम्राट बहादुरशाह से मिले और उन्हें मुगल सम्राट ने मनसबें प्रदान की। 1710 ई0 में छत्रसाल भी उस मुगल सेना में सम्मिलित हो गया जो सिक्खों के विरूद्ध कार्यवाही कर रही थी। फर्रूखसियर के शासनकाल में भी छत्रसाल ने मुगलों का सहयोग किया। किन्तु स्वतंत्रता की चिंगारी ने छत्रसाल को अधिक समय तक मुगलों की सेवा में नहीं रहने दिया। फलतः 1720 ई0 में छत्रसाल ने विद्रोह कर दिया। छत्रसाल के नेतृत्व में बुंदेलों ने काल्पी की ईंट से ईंट बजा दी और स्थानीय आमिल को मार डाला। इस घटना के पश्चात् छत्रसाल के विरूद्ध दिलेर खाँ को भेजा गया। किन्तु उसे कोई सफलता हाथ नहीं लगी। तत्पश्चात् मुहम्मद खाँ को छत्रसाल की शक्ति को कूचलने के लिए भेजा गया। छत्रसाल ने पेशवा से सहायता की याचना की। पेशवा बाजीराव ने छत्रसाल की याचना को स्वीकार कर लिया और उसने मार्च, 1729 ई0 में मुहम्मद खाँ पर आक्रमण किया। मुहम्मद खाँ ने मुगल बादशाह से सहायता की मांग की। इसी मध्य महामारी के कारण मराठा सेनाऐं वापिस दक्षिण को चली गयी। छत्रसाल अकेला पड़ गया। अगस्त, 1729 ई0 में उसने मुहम्मद खाँ से समझौता कर लिया। छत्रसाल की मृत्यु के पश्चात् उसके पुत्रों ने रियासत को आपस में विभाजित कर लिया।

जम्मू तथा कश्मीर :

जम्मू लम्बे समय से एक हिन्दू राजपूत वंश के अधीन था। पहाड़ी रियासतों से कर वसूल करने तथा क्षेत्र में किसी भी प्रकार के विद्रोह का दमन करने के लिए मुगल बादशाह ने जम्मू में एक मुस्लिम फौजदार नियुक्त कर

रखा था। अठारहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में फर्रूखसियर ने जकारिया खाँ को जम्मू का फौजदार नियुक्त किया। उसे सिक्खों के साथ संघर्ष करना पड़ा।

मुगल साम्राज्य की निर्बलता देखकर जम्मू के राजा ने स्वतंत्र आचरण करना शुरू कर दिया और 1746 ई0 में मुगलों को कर देना बन्द कर दिया। अठारहवीं सदी के पूर्वार्द्ध में कश्मीर में निरन्तर अशान्ति बनी रही। औरंगजेब के पश्चात् कोई भी मुगल सम्राट कश्मीर नहीं गया। बहादुरशाह व जहाँदरशाह के शासनकाल में अब्दुस समद खाँ कश्मीर का गवर्नर था। फर्रूखसियर ने उसे पंजाब भेज दिया। 1752 ई0 में कश्मीर पर अहमदशाह अब्दाली ने अधिकार कर लिया।

बंगाल :

बंगाल, हैदराबाद और अवध इस अर्थ में मुगल साम्राज्य के तीन उत्तराधिकारी राज्य थे जिनकी स्थापना उन मुगल सूबेदारों ने की, जिन्होंने केन्द्र के साथ औपचारिक रूप से अपना सम्बन्ध कभी नहीं तोड़ा, लेकिन जो स्थानीय स्तर पर शक्ति व्यवहार में लगभग स्वतंत्रता का प्रयोग करते रहे। 1717 ई0 में मुर्शिद कुली खाँ के सुबेदार बनने के बाद सूबा बंगाल मुगलों के नियंत्रण से धीरे–धीरे स्वतंत्र होता गया।

बंगाल के स्वतंत्र राज्य के संस्थापक मुर्शिद कुली खाँ थे। औरंगजेब के काल से ही मुर्शिद कुली खाँ को बंगाल के दीवान तथा नायब गवर्नर का पद मिला हुआ था। पहले राजकुमार अजीमुशान के अधीन और फिर राजकुमार फर्रूखसियर के अधीन 1713 ई0 में मुर्शिद कुली खाँ को बंगाल का गवर्नर

नियुक्त कर दिया गया। 1719 ई0 में उड़ीसा भी उसके अधीन कर दिया गया। मुर्शिद कुली खाँ एक सफल शासक था और उसके अधीन बंगाल ने व्यापार और वाणिज्य में बहुत प्रगति की।

औरंगजेब ने आरम्भ में उसे सूबे के राजस्व–प्रशासन को चुस्त–दुरूस्त बनाने के लिए बंगाल का दीवान, (राजस्व का संग्राहक) नियुक्त किया था। फिर 1710 ई0 में दो साल के छोटे अंतराल के बाद बहादुरशाह ने उसी पद पर दोबारा नियुक्त किया। जब फर्रूखसियर बादशाह बना, तो उसने इस पद पर मुर्शिद कुली खाँ की नियुक्ति को पक्का कर दिया, और साथ ही उसे बंगाल का नायब सूबेदार और उड़ीसा का सूबेदार भी बना दिया। आगे चलकर 1717 ई0 में उसे जब बंगाल का नाजिम (सूबेदार) बना दिया गया, तो 'उसे एक ही साथ नाजिम और दीवान जैसे दो पद सम्भालने का अभूतपूर्व विशेषाधिकार मिल गया। नियंत्रण और जवाबी नियंत्रण की जिस व्यवस्था के द्वारा साम्राज्य के इन दिनों अधिकारियों को अंकुश में रखने के लिए पुरे मुगल काल में शक्ति का जो विभाजन जारी रखा गया था, उसी को अब इस तरह समाप्त कर दिया गया।'[14] इससे मुर्शिद कुली को, जो अपने सुदक्ष राजस्व–प्रशासन के लिए पहले से जाना जाता था, अपनी स्थिति को और मजबूत बनाने में सहायता मिली। औपचारिक रूप से मुगलों की सत्ता की अवज्ञा उसने निश्चित ही नहीं की और हमेशा शाही खजाने को राजस्व भेजता रहा। सच तो यह है कि 'वित्तीय कठिनाईयों और अनिश्चितताओं के कालों में संकटग्रस्त मुगल बादशाहों के लिए बंगाल का राजस्व अक्सर आय का अकेला नियमित स्रोत होता था।'[15] लेकिन तैमूरी शासकों के प्रति औपचारिक निष्ठा के

इस दिखावे की आड़ में मुर्शिद कुली अपने इलाके में पर्याप्त स्वतंत्रता का आनन्द लेने लगा और उसने लगभग एक पुश्तैनी राज्य की बुनियाद ही डाल दी। वह बंगाल का मुगल बादशाह द्वारा नियुक्त आखिरी सूबेदार था। मुर्शिद कुली ने मुगलों से अपने औपचारिक सम्बन्ध कभी नहीं तोड़े और बंगाल का सालाना राजस्व नियमित रूप से दिल्ली भेजता रहा। लेकिन अपने क्षेत्र में वह एक स्वतंत्र राजा की तरह व्यवहार करता रहा और सच्चे वंशवादी ढ़ंग से उसने अपनी बेटी के बेटे सरफराज खाँ को अपना वारिस नियुक्त किया। लेकिन सरफराज को उसके पिता शुजाउद्दीन मुहम्मद खाँ (मुर्शिद कुली के दामाद) ने ही बेदखल कर दिया।

1727 ई0 में मुर्शिद कुली खाँ की मृत्यु के पश्चात् उसका जामाता शुजाउद्दीन उसका उत्तराधिकारी बना। उसने 1727 ई0 में बंगाल और उड़ीसा, इन दो सूबों को अपने नियंत्रण में ले लिया और मुगल बादशाह मुहम्मद शाह से अपने पद का अनुमोदन भी करा लिया। उसने भी मुगल बादशाह से सम्बन्ध बनाकर रखा, पर स्थानीय प्रशासन में स्वतंत्रता का व्यवहार करता रहा, जिसे बंगाल की राजनीति की नई शक्तियों, अर्थात् जमींदारों, सौदागरों और बैंकरों की हिमायत हासिल थी। जैसा कि फिलिप कैल्किंस का तर्क है, '1730 ई0 के दशक तक ''बंगाल की सरकार बाहर से आरोपित शासन से अधिक बंगाल की वर्चस्व प्राप्त शक्तियों के सहयोग से बनी सरकार नजर आती थी। लेकिन यह बात भी सही है कि सौदागरों, बैंकरों और जमींदारों की शक्ति की इस क्रमिक वृद्धि का अर्थ नाजिम की सत्ता का सापेक्षतः कम होना भी था।[16]

यह बात '1739–40 ई0 के एक तख्तापलट से एकदम स्पष्ट हो गई, जब शुजाउद्दीन के बेटे सरफराज खाँ को जो कि अब नया नाजिम बन चुका था, उसी के फौजी कमानदार अली वर्दी खाँ ने जगतसेठों के बैंकिंग घराने और कुछेक शक्तिशाली जमींदारों की सहायता से बेदखल कर दिया।[17] सरफराज को इसलिए नहीं जाना पड़ा कि वह एक अकुशल प्रशासक था, बल्कि इसलिए कि उसने जगतसेठ घराने को नाराज कर दिया था तथा कुछेक शक्तिशाली अधिकारियों का समर्थन भी खो बैठा था। उसकी बेदखली के साथ नाजिम का पद एक सुयोग्य फौजी सिपहसालार अलीवर्दी खाँ को मिला।

अलीवर्दी खाँ बंगाल, बिहार और उड़ीसा का गर्वनर बन बैठा। उसने सम्राट को 2 करोड़ रूपया नजराने के रूप में देकर सम्राट की अनुमति भी प्राप्त कर ली। 1746 ई0 में सम्राट ने अलीवर्दी खाँ से कुछ और धन मांगा परन्तु उसने कोई ध्यान नहीं दिया। अलीवर्दी खाँ मराठों के विरूद्ध भी रक्षा के लिए सम्राट पर निर्भर नहीं रहा। परन्तु फिर भी उसने निजाम और नवाब वजीरों की भाँति मुगल राजसत्ता को झूठमूठ बनाए रखा।

मुगलों से लगभग पूरा सम्बन्ध विच्छेद अलीवर्दी खाँ के शासनकाल में हुआ। अब सभी प्रमुख नियुक्तियाँ बादशाह का कोई हवाला दिए वगैर की जाने लगीं और आखिरकार दिल्ली की ओर राजस्व का नियमित प्रवाह रोक दिया गया। हालांकि मुगल सत्ता की कभी कोई औपचारिक अवज्ञा नहीं की गई, पर बंगाल, बिहार और उड़ीसा में सभी व्यावहारिक दृष्टियों से स्वतंत्र, हर तरह के मुगल नियंत्रण से मुक्त एक प्रशासन पैदा हुआ। अलीवर्दी के लिए बड़ी

समस्याएँ बाहर से आई, उसे मराठों की लूटमार और अफगान विद्रोह का सामना करना पड़ा।

1756 ई0 में उसकी मृत्यु हो गई और उसका नाती सिराजुद्दौला बंगाल का शासक बना उसने लगभग 14 महीने तक राज्य किया। जून, 1757 ई0 में उसका अंग्रेजों से संघर्ष हुआ। वह प्लासी के मैदान से भाग गया। बाद में उसे मार दिया गया और अन्त में अंग्रेजों को इस सत्ता संघर्ष में सफलता मिली।

इस प्रकार मुगल साम्राज्य का एक महत्वपूर्ण प्रान्त अंग्रेजों के हाथ में चला गया, जिसके धन बल से उन्होंने पहले दक्षिण को और फिर उत्तर भारत को अपने प्रभाव में ले लिया।

राजपूत :

मध्यकाल में उत्तर भारत के सैनिक श्रम के बाजार में घुमक्कड़ योद्धाओं के अनेक समूह फले–फूले और मुगलों की सेना ने सिपाहियों की भर्ती उन्हीं में से की। धीरे–धीरे पेशेवर विशेषज्ञता ने इन लोगों को उपजातीय पहचान प्रदान की। इनमें एक थे राजपूत, क्योंकि इस काल में किसान से राजपूत बनने की सामाजिक गतिशीलता अक्सर देखी जा रही थी। 'सोलहवीं और सत्रहवीं सदियों तक ये राजपूत कोई बीस प्रमुख वंशों के रूप में संगठित थे और अप्रत्यक्ष शासन की नीति अपनाने वाले मुगल बादशाहों का संरक्षण पाकर इन वंशों के सरदारों ने अपने–अपने इलाकों पर अपने केन्द्रीकृत नियंत्रण स्थापित कर लिए।'[18] अकबर के समय से ही विभिन्न राजपूत सरदारों को पेशकशी जमींदारों के रूप में मुगल प्रशासनिक ढ़ाचे में शामिल किया जाने लगा था। वे

अधीनता के प्रतीकात्मक मुगल बादशाह को पेशकश (सालाना खिराज) देते थे और आंतरिक प्रशासन में स्वतंत्रता का उपभोग करते थे। उनमें से अनेकों को मुगल सेना में ऊँचे पद दिए गए थे, उन्होंने साम्राज्य की शक्ति बढ़ाने में योगदान दिया, और बदले में उनको रजवाड़े पर अपने नियंत्रण को मजबूत बनाने के प्रयासों में सहायता दी गई। इस तरह जब अनेक राजपूत सरदारों ने अपने–अपने क्षेत्रों में केन्द्रीकृत सत्ता के दावे किए, तो भूमि के स्वामित्व पर आधारित राजपूत राज्यों के अंदर के शक्ति सम्बन्धों पर उसका महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा। इससे पहले भूमि की पात्रता वंशगत या वैवाहिक सम्बन्धों से प्राप्त पुश्तैनी अधिकारों पर निर्भर होती थी, पर अब उसका स्थान सेवा और निष्ठा के वे सोपानिक सिद्धान्त लेने लगे, जो संरक्षितों को जमीन के पट्टों के पात्र बनाते थे। सरदारों को और उनकी केन्द्रीयकरण की नीतियों को स्थानीय समूहों या वंशों के अंदर छोटे खानदानों की ओर से बराबर चुनौती मिलती रहती थी। जब कोई विद्रोह करता था तो उसकी सहायता उसके फौरी नातेदार भी करते थे तो प्रायः राजव्यवस्था में खपा लिए जाते थे और इस तरह विद्रोह राजनीतिक व्यवहार का एक सुस्वीकृत मापदण्ड था।

राजपूज शासन व्यवस्थाएँ 'घात–प्रतिघात के ताने बाने पर, अनन्य राजनीतिक सम्बन्धों पर आधारित थीं; जिन्होंने ऐसी राजनीतिक संरचनाओं को जन्म दिया जो न तो क्षेत्रीय अखण्डता के आधार पर स्थापित थीं और न ही पूर्ण और अनन्य राजनीतिक निष्ठाओं के आधार पर।'[19] स्थानीय निष्ठाओं, केन्द्रीकरण करने वाली नातेदारी और वंशों की शत्रुताओं के इसी पेचीदा ताने–बाने के अंदर राजपूतों ने मुगलों के साथ अपने सम्बन्ध बनाए। सत्रहवीं

सदी में औरंगजेब के काल में लगता था कि दोनों के सौहार्द्रपूर्ण सम्बन्ध टूट रहे थे; हालांकि प्रचलित ऐतिहासिक मिथकों के विपरीत इसका कारण न तो धार्मिक प्रतिक्रमण था और न राजपूत राष्ट्रवाद था। भर्ती के मामलें में औरंगजेब ने राजपूत सरदारों के खिलाफ कोई भेदभाव नहीं किया, लेकिन दूसरे राजपूत सरदारों की कीमत पर राजसिंह के नेतृत्व में मेवाड़ के निरंतर क्षेत्रीय प्रसार को वह शायद ही बरदाश्त कर सकता था, क्योंकि वह शक्ति–संतुलन की परम्परागत मुगल नीति को भंग कर देता। इसलिए उस पर अंकुश लगाने के लिए औरंगजेब पड़ोस के दूसरे राजपूत सरदारों को संरक्षण देने लगा।

राजपूतों ने, जो औरंगजेब की राजनीति से अप्रसन्न थे, 'अठारहवीं शताब्दी में मुगल साम्राज्य की दुर्बलता से लाभ उठाकर उन्होंने अपनी प्राचीन स्वतंत्रता पुनः स्थापित कर ली तथा चारों दिशाओं में अपने राज्यों का विस्तार कर लिया।'[20] राजपूतों तथा मुगलों के आपसी प्रेम–घृणा सम्बन्धों से प्रेरित होकर बहादुरशाह ने 1708 ई0 में जोधपुर पर आक्रमण कर दिया। फिर किसी प्रकार जयसिंह की मध्यस्थता से अजीतसिंह का मनसब और वेतन जागीर बहाल कर दिया गया; परन्तु अजीतसिंह की हरकतों से क्षुब्ध होकर मुगल सम्राट बहादुरशाह ने पुनः अपने अधिकारियों को जोधपुर भेज दिया। आमेर के सम्बन्ध में भी मुगल सम्राट ने इसी नीति को अपनाया। अन्त में दोनों राजपूत नरेश मेवाड़ के महाराणा से मिले और इनकी संयुक्त शक्ति ने मारवाड़ तथा आमेर को पुनः अपने अधिकार में कर लिये। इसके अतिरिक्त साम्राज्य विस्तार की दृष्टि से अजीतसिंह ने नागौर तथा अजमेर पर आक्रमण किया। इन

आक्रमणकारी कार्यवाहियों से तंग आकर मुगल सम्राट ने इनसे मेल कर लिया और इन्हें फिर से मनसब तथा भेंट देकर प्रसन्न कर लिया। जिस समय 'फर्रूखसियर, सैय्यद बन्धुओं की सहायता से दिल्ली के सिंहासन पर बैठा उस समय अजीतसिंह मारवाड़ में नियुक्त शाही अधिकारियों को निकालने तथा उनके मुकामों और अजान को बन्द कराने आदि कार्यो में लग गया।'[21] अजीतसिंह की इन कार्यवाहियों से क्रोधित होकर मुगल सम्राट फर्रूखसियर ने एक विशाल सेना मारवाड़ भेजी। अजीतसिंह मुगल सेना का सामना न कर सका। फलतः उसने हुसैन अली की शर्तो के अनुसार सन्धि कर ली, जिसमें अजीतसिंह ने अपनी पुत्री का विवाह मुगल सम्राट फर्रूखसियर से और अपने पुत्र अभय सिंह को मुगल सम्राट की सेवा में भेजना स्वीकार किया। सन्धि की शर्त के अनुसार अजीतसिंह ने अपनी पुत्री इन्द्र कुँवरी का विवाह 1715 ई0 में बादशाह के साथ कर दिया। कुछ समय उपरान्त मुगल सम्राट और सैय्यद बन्धुओं में तनाव उत्पन्न हो गया। अजीतसिंह भी दिल्ली दरबार में होने वाले षड़यंत्रों में सम्मिलित हो गया। जिसके परिणामस्वरूप फर्रूखसियर की हत्या हो गयी। नये मुगल सम्राट मुहम्मदशाह ने अजीतसिंह को अहमदाबाद का पुनः सूबेदार बना दिया। किन्तु अजीत सिंह शीघ्र ही आंतरिक षड़यंत्रों, उपद्रवों तथा विश्वासघात का शिकार हो गया। उसको उसके ही पुत्र बख्त सिंह ने मार दिया। अजीतसिंह के दुःखद अन्त के पश्चात् उसका सबसे बड़ा पुत्र अभयसिंह गद्दी पर बैठा। उसने 1749 ई0 तक शासन किया। वह गुजरात में मुगल सूबेदार भी रहा। बीकानेर पर उसके आक्रमण ने उसे आमेर के सवाई जयसिंह के साथ संघर्ष में धकेल दिया। अभयसिंह की मृत्यु के पश्चात् मारवाड़ अपनी आंतरिक स्थिरता खो बैठा और रियासत को उत्तराधिकार के प्रश्न पर लम्बे

गृहयुद्ध से भारी हानी उठानी पड़ी। विजयसिंह के शासनकाल (1752 ई0–1792 ई0) तक मारवाड़ समाप्ति के किनारे तक पहुँच गया।

इस समय राजपूताने का दूसरा महत्वपूर्ण राज्य आमेर (जयपुर) था, जहाँ का शासक जयसिंह द्वितीय था। जो इतिहास में सवाई जयसिंह के नाम से प्रसिद्ध है। जिस समय 'सवाई जयसिंह आमेर की राजगद्दी पर बैठा उस समय राज्य की आन्तरिक दशा दयनीय थी।'[22] इसका कारण स्पष्ट था मुगलों के साथ सम्बन्ध हो जाने से आमेर के शासक अधिकांशतः राज्य से बाहर ही रहते थे, जिसके कारण राज्य की शासन व्यवस्था सुचारू रूप से नहीं चल पाती थी। दूसरे सामन्त अपनी शक्ति बढ़ा रहे थे। ऐसी परिस्थिति में सवाई जयसिंह ने सर्वप्रथम अपने राज्य की स्थिति को सुधारने का कार्य किया। इसके उपरान्त उसने औरंगजेब के दक्षिण अभियान में सहायता की। जहाँ वह मराठों के सम्पर्क में आया और उनसे मैत्री सम्बन्ध स्थापित करने में सफल रहा। औरंगजेब की मृत्यु के पश्चात् उत्तराधिकारी के संघर्ष में सवाई जयसिंह ने आजम का साथ दिया। विजयसिंह भी आमेर का शासक बनना चाहता था इसलिए उसने मुअज्जम का पक्ष लेना लाभप्रद समझा। दोनों पक्षों का 2 जून, 1707 ई0 में जाजऊ के मैदान में युद्ध हुआ। इस युद्ध में आजम मारा गया और मुअज्जम की विजय होने लगी। सवाई जयसिंह तुरन्त मुअज्जम के पक्ष में चला गया।

मुअज्जम बहादुरशाह के नाम से सिंहासन पर बैठा। बहादुरशाह सवाई जयसिंह से प्रसन्न नहीं था क्योंकि उसने आरम्भ में आजम का सहयोग किया था। बहादुरशाह ने सम्राट बनते ही आमेर की ओर प्रस्थान किया। वहाँ

पहुँचकर उसने विजयसिंह को आमेर का शासक घोषित कर पुरस्कृत किया। आमेर का राज्य पुनः प्राप्त करने के लिए सवाई जयसिंह मुगल सम्राट के साथ रहा। इसी मध्य सवाई जयसिंह ने मारवाड़ के शासक अजीतसिंह को अपनी ओर मिला लिया। मेड़ता के स्थान पर दोनों राजपूत शासक मुगल सम्राट से मिले और उससे आमेर पुनः प्राप्त करने लिए प्रार्थी हुए। किन्तु सम्राट ने उन दोनों की प्रार्थना पर कोई ध्यान नहीं दिया। ऐसी प्रतिकूल परिस्थिति में दोनों राजपूत राजा मेवाड़ के महाराणा अमरसिंह द्वितीय से मिलने के लिए चल दिये। मेवाड़ पहुँचने की सूचना जब मुगल सम्राट को मिली तो उसने महाराणा अमरसिंह को लिखा कि यदि आमेर और जोधपुर के शासक क्षमायाचना कर लें तो उनके राज्य पुनः उन्हें लौटा दिये जायेंगे। किन्तु महाराणा ने मुगल सम्राट के संदेश का कोई प्रत्युत्तर नहीं भेजा। मेवाड़, मारवाड़ और आमेर के शासकों ने मुगल शक्ति के विरूद्ध युद्ध करने की योजना बनाई। तीनों राज्यों की सेनाएँ सर्वप्रथम जोधपुर पहुँची जिस पर अजीतसिंह का अधिकार जुलाई, 1708 ई0 को स्थापित किया गया। यहाँ से संयुक्त सेनाए आमेर की ओर बढ़ी तो उन्होंने पाया की कछवाहा सरदारों ने अपने प्रयासों से ही विजयसिंह व मुगल फौजदार को पराजित कर दिया। अतः सवाई जयसिंह ने आमेर पर पुनः अधिकार स्थापित कर लिया और उसे शाही खिलअत से सम्मानित भी किया गया। किन्तु मालवा की सूबेदारी के प्रश्न को लेकर सवाई जयसिंह के बहादुरशाह के साथ सम्बन्ध मधुर नहीं बन पाये। 'बहादुरशाह की मृत्यु के पश्चात् जहाँदरशाह ने तथा उसके मरने पर फर्रूखसियर ने सवाई जयसिंह को प्रसन्न करने की नीति को अपनाया।'[23]

जहाँदरशाह ने सवाई जयसिंह के मनसब को सात हजार कर दिया और मालवा का सूबेदार नियुक्त किया। सवाई जयसिंह ने मालवा की स्थिति में सुधार किया तथा अफगानी विद्रोहियों और मराठों को दबाये रखा। मालवा की स्थिति बेहतर होने पर मुगल सम्राट ने सवाई जयसिंह को जाटों का दमन करने के लिए बुलाया। सवाई जयसिंह भी आमेर राज्य को सुरक्षित रखने के लिए जाटों का दमन चाहता था। अतः जाटों के विरूद्ध प्रस्थान का आदेश मिलते ही सवाई जयसिंह ने जाट नेता चूड़ामन को सन्धि करने के लिए विवश कर दिया। कुछ समय उपरान्त जाट पुनः सक्रिय हो गये। मुगल सम्राट मुहम्मदशाह ने भी सवाई जयसिंह को ही जाटों के विद्रोह को दबाने हेतु भेजा। सवाई जयसिंह ने चूड़ामन के भतीजे बदनसिंह को अपनी ओर मिला लिया और उसकी सहायता से विद्रोही जाटों पर विजय प्राप्त की। किन्तु इस मध्य मालवा की स्थिति बिगड़ गयी। मराठों के आतंक से लगभग सम्पूर्ण मालवा आतंकित था। इस विषम परिस्थितियों को नियंत्रित करने के लिए सवाई जयसिंह को मालवा का दूसरी बार सूबेदार बनाया गया। किन्तु इस बार सवाई जयसिंह को पराजय का सामना करना पड़ा। मराठों की बढ़ती शक्ति को देखकर सवाई जयसिंह ने राजपूताना के राजाओं से वार्ता की। 'राजपूताना के अधिकांश शासक मराठों की शक्ति को कम करने में उत्सुक थे, क्योंकि बिना इसके न तो उनके राज्य की सीमा बढ़ सकती थी और न वे सुरक्षित ही अनुभव करते थे।'[24] इन परिस्थितियों से लाभ उठाने के लिए जयपुर, जोधपुर, उदयपुर, कोटा, किशनगढ़, नागौर, बीकानेर आदि के शासक हुर्डा (मेवाड़) में एकत्रित हुए। उन्होंने 7 जुलाई, 1739 ई0 को एक अहदनामा लिखा जिसके अनुसार उन्होंने एक–दूसरे से सहायता देने, दुःख–सुख में साथ रहने, तथा

एक–दूसरे के मान–सम्मान रखने की शपथ खायी। उन्होंने एक–दूसरे के शत्रु को शरण न देना भी स्वीकार किया। इसके अनुसार वर्षा ऋतु के बाद रामपुरा में मिलकर किसी सैनिक कार्य को आरम्भ करने का उन्होंने निर्णय लिया।[24(i)]

अठारहवीं सदी के पूर्वार्द्ध में राजपूतों द्वारा लिया यह निर्णय ऐतिहासिक था किन्तु पारस्परिक अविश्वास और निजी स्वार्थो के कारण यह समझौता स्थायी न रह सका। उपर्युक्त आधार पर यह कहना तर्क संगत होगा कि अठारहवीं सदी के पूर्वार्द्ध में जयसिंह द्वितीय ने शाही राजनीति में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई और आगरा तथा मालवा के सूबेदार के रूप में मुगल साम्राज्य की सेवा की किन्तु वह न तो विघटित होते हुए मुगल साम्राज्य को बचाने में सफल रहा और न ही कोई विकल्प प्रस्तुत कर सका। राजपूताना के इतिहास में ही नहीं बल्कि हिन्दुस्तान के इतिहास में मेवाड़ राज्य का विशेष स्थान रहा है। किन्तु अठारहवीं सदी के पूर्वार्द्ध में मेवाड़ राज्य अपने प्राचीन गौरव की रक्षा न कर सका। इस काल में मेवाड़ के शासक महत्वाकांक्षी तथा झगड़ालू सामन्तों पर नियंत्रण करने और बाहरी हमलों का प्रतिरोध करने में सफल नहीं हुए। संग्रामसिंह द्वितीय ने 1710 ई0 से 1733 ई0 तक शासन किया। उसके शासनकाल में आन्तरिक विघटन के लक्षण उभर कर सामने आ गये। जगतसिंह द्वितीय ने 1734 ई0 से 1751 ई0 तक शासन किया। इसके शासनकाल में पेशवा बाजीराव प्रथम मेवाड़ की दक्षिणी सीमा पर प्रकट हुआ। जगतसिंह ने उदयपुर में उसका सत्कार किया और एक सन्धि पर हस्ताक्षर किये जिसके अधीन उसने एक वार्षिक नजराना देने का वचन दिया। इससे

स्पष्ट है कि अठारहवीं सदी के पूर्वार्द्ध में मेवाड़ के शासक राजनीतिक दृष्टि से कोई महत्वपूर्ण भूमिका निभाने की स्थिति में नहीं थे।

इस प्रकार एक समय, दिल्ली के पश्चिम में 100 मील से लेकर भारत के पश्चिमी तट स्थित सूरत तक का समस्त देश राजपूतों के अधीन था। परन्तु मुगल सम्राटों की भाँति वे भी आंतरिक षड़यंत्रों, परस्पर कलहों और विश्वासघात के शिकार थे। साथ ही मराठों के हो रहे निरंतर आक्रमणों से उनकी शक्ति क्षीण हो रही थी।

जाट :

अठारहवीं सदी में बड़ी शक्तियों के अलावा, मुगल साम्राज्य की कमजोरी का फायदा उठाकर उत्तर भारत में कुछ छोटे राज्य भी उभरे। भरतपुर का जाट रजवाड़ा इसका एक महत्वपूर्ण उदाहरण है। ये जाट दिल्ली–मथुरा क्षेत्र में रहने वाले एक काश्तकार (खेतिहर) और पशुपालक जाति थे। अपने जमींदारों के साथ जातीय सम्बन्ध ने बिरादरी में एकजुटता को जन्म दिया। ये लोग जहाँगीर के समय से ही मुगल साम्राज्य के खिलाफ विद्रोह करने लगे। जाट किसानों का पहला विद्रोह 1669 ई0 में हुआ और उसे कुचलने के लिए स्वयं बादशाह को जाना पड़ा।

दिल्ली, मथुरा तथा आगरा के समीपवर्ती क्षेत्रों में कृषि कार्य में लगे जाट लोगों ने औरंगजेब की नीति के विरूद्ध विद्रोह कर दिया था। यद्यपि विद्रोह तो दब गया था परन्तु जाट निरन्तर संघर्ष करते रहे। कुछ समय उपरान्त संघर्षरत जाट जाति को चूड़ामन जाट के रूप में सर्वमान्य नेता मिल गया।

औरंगजेब की मृत्यु के पश्चात् उसने अपनी शक्ति का अत्यधिक विस्तार किया। स्वतंत्र राज्य के निर्माण की आकांक्षा के साथ उसने थून का दुर्गीकरण किया तथा इस प्रदेश में मुगलों की शक्ति को चुनौती दी। 1721 ई0 में आगरा के सूबेदार जयसिंह द्वितीय के नेतृत्व में मुगल सेना ने इसके विरूद्ध अभियान किया व सफलता प्राप्त की। इसी समय चूड़ामन के पुत्र मोहकमसिंह व भतीजे बदनसिंह में सम्पत्ति व जमींदारी के बंटवारे को लेकर झगड़ा शुरू हो गया। दुःखी होकर चूड़ामन ने आत्महत्या कर ली। इस पारिवारिक संघर्ष में बदनसिंह को सफलता प्राप्त हुई तत्पश्चात् चूड़ामन के भतीजे बदनसिंह ने जाटों का नेतृत्व सम्भाल लिया। उसने अपनी सेना को शक्तिशाली बना लिया तथा डीग, कुम्हेर, वैर तथा भरतपुर में चार दुर्ग बना लिए। नादिरशाह के आक्रमण के पश्चात् हुई अव्यवस्था से लाभ उठा कर उसने आगरा तथा मथुरा पर अधिकार जमा लिया और भरतपुर राज्य की नींव रखी। 'अहमदशाह ने इस परिस्थिति को स्वीकर कर लिया तथा बदनसिंह को राजा की उपाधि दे दी जिसमें 'महेन्द्र' शब्द भी जोड़ दिया गया।'[25]

1756 ई0 में सूरजमल इस राज्य का उत्तराधिकारी बना। वह जाट राज्य का सर्वाधिक योग्य शासक था। उसने इस जाट राज्य को अपने प्रभावशाली नेतृत्व से अपने उत्कर्ष पर पहुँचा दिया। गुलाम अली के शब्दों में वह ''जाट कबीले का प्लेटो था।''[26] उसने अपने पिता के समय से ही जाट राज्य की युद्ध नीति और कूटनीति का संचालन किया। अपनी जन्मजात प्रतिभा, स्पष्ट दूरदर्शिता, अदम्य उत्साह, अटल साहस, कुशाग्रबुद्धि एवं राजनीतिक विलक्षणता के बल पर उसने जाट राज्य को उस बिन्दू पर पहुँचा दिया, जहाँ हिन्दुस्तान

की बड़ी शक्तियाँ उसकी सहायता की अपेक्षा करती थी और बड़ी से बड़ी विपत्ति के समय वह स्वयं शक्ति, क्षमता एवं सूझबूझ के बल पर उसकी सुरक्षा कर सकता था। पानीपत के तृतीय युद्ध में जाट राजा सूरजमल ने मत विभिन्नता के कारण मराठा सेनापति सदाशिवराव भाऊ का साथ छोड़ दिया। इस युद्ध में मराठों की पराजय हुई। मार्च 1761 ई0 में अहमदशाह अब्दाली भारत से वापस लौट गया। इस स्थिति में वह सबसे अधिक शक्तिशाली शासक बन गया। राजा सूरजमल की उत्तर भारत में यह राजनीतिक शक्ति उसकी मृत्यु तक बनी रही। सूरजमल की मृत्यु के समय उसका राज्य का विस्तार पूर्व में गंगा से लेकर दक्षिण में चंबल तक और पश्चिम में आगरा सूबे से उत्तर में दिल्ली के सूबे तक फैला हुआ था। सूरजमल का उत्तराधिकारी जवाहर सिंह भी योग्य पिता का योग्य पुत्र था। उसने जाट राज्य की सीमाओं को और अधिक विस्तृत किया। किन्तु उसकी मृत्यु (1768 ई0) के पश्चात् जाट राज्य का पतन होने लगा।

सिख :

पंजाब में सिख पंथ का इतिहास मुगल साम्राज्य जितना ही पुराना था। सन् 1469 ई0 में जन्मे गुरू नानक ने जिन दिनों आंतरिक भक्ति व मनुष्यों की समानता का उपदेश देना प्रारम्भ किया, उन्हीं दिनों बाबर यहाँ मुगल साम्राज्य की नींव रख रहा था। मध्यकालीन भारत की भक्ति और संत परम्परा के अंदर यही उस सिख मत का आरम्भ था जिसने धीरे–धीरे लाखों श्रद्धालुओं को अपनी ओर खीचने लगा था और बाद में गुरूओं के नेतृत्व में एक शक्ल और परिभाषा ग्रहण करने लगा था।

'औरंगजेब आरम्भ में सिखों के बहुत खिलाफ नहीं था। लेकिन जब पंथ का आकार बढ़ा और उसने मुगलों की केन्द्रीय सत्ता को चुनौती दी, तब बादशाह उनके खिलाफ हो गया'[27] और सिक्खों के नौवें गुरू तेग बहादुर को दिल्ली में 1675 ई0 में मृत्युदण्ड दे दिया गया। 'दसवें गुरू, गुरू गोविन्द सिंह ने एक महत्वपूर्ण कदम उठाया; उन्होंने खालसा पंथ की नींव डालकर सिखों को एक सैनिक संगठन का रूप दे दिया। यह एक ऐसा अनुष्ठान था जिसमें स्वयं गुरू ने शिष्यों को दीक्षा दी और उन्हें बिन कटे केश और कृपाण समेत पाँच स्पष्ट पहचान धारण करने का निर्देश दिया, जो सार्वजनिक रूप से उनकी पहचान का ऐलान करें।'[28]

अठारहवीं शताब्दी में पंजाब में सिक्खों का एक राजनीतिक शक्ति के रूप में उदय व विस्तार मुगलों और बाहर के आक्रमणकारियों के लिए एक चुनौती और रूकावट बना रहा। सिक्ख पंथ के दसवें तथा अन्तिम गुरू, गुरू गोविन्दसिंह ने धर्म तथा स्वतंत्रता की रक्षा करने के लिए सिक्खों को योद्धाओं में परिणत कर दिया। 1708 ई0 में इनका नेतृत्व बन्दा बहादुर ने ले लिया तथा आने वाले 8 वर्ष तक वह मुगलों से जूझता रहा। युद्ध में अपने ही सहयोगियों द्वारा विश्वासघात किए जाने पर वह बन्दी बना लिया गया तथा 1716 ई0 में उसकी निर्मम हत्या कर दी गई। उस समय सिक्खों की अवस्था बहुत क्षीण थी।

बंदा की फाँसी से पंजाब में सिख शक्ति का अंत नहीं हुआ। हालांकि फौरन कोई ऐसा नहीं था जो नेतृत्व सम्भाल सकता, लेकिन एक केन्द्रीय नेतृत्व के न होने के बावजूद सिख बागियों के घुमक्कड़ दस्तों ने उत्तर भारत

में शाही नियंत्रण के खात्मे का फायदा उठाकर अपनी स्वतंत्रता जता दी। 'नादिरशाह तथा अहमदशाह अब्दाली के निरंतर आक्रमणों से मुगलों की केन्द्रीय सत्ता लगभग समाप्त हो गई।'[29] भारतीय रंगमंच से अब्दाली के हटने के बाद सिखों ने अपनी राजनीतिक सत्ता फिर स्थापित कर ली। लेकिन इस चरण में सिख शासन–व्यवस्था में शक्ति का क्षैतिज वितरण हुआ, क्योंकि नातेदारी सम्बन्धों पर आधारित मिस्लो ने ईकाईयों के रूप में अपने भूभाग बना लिये। कोई मिस्ल जब कभी एक क्षेत्र जीतता था तो उसे विजय में हर सदस्य के योगदान की प्रकृति के आधार पर उसके सदस्यों में बाँट दिया जाता था। स्पष्ट है कि सबसे बड़ा भाग मिस्ल के प्रमुख को जाता था, लेकिन सबसे नीचे के सिपाही को भी एक पट्टी (जमीन का भाग) मिलता था, जिसका उपभोग वह बराबर के एक भागीदार के रूप में पूरी आजादी के साथ कर सकता था। इलाकों पर कब्जा किये बैठी ऐसी मिस्लों की तादात 1770 में साठ से अधिक थी। उन सबसे ऊपर था दल खालसा, जिसका एक चुनिंदा नेता होता था। कभी–कभी ये मिस्ले आपस में मिल भी जाती थी, जैसे 1765 में अफगानों के खिलाफ मिल गई थी। लेकिन 'पंजाब में कुल मिलाकर राजनीतिक सत्ता इस काल में विकेन्द्रीकृत ही रही और उसका क्षैतिज वितरण अधिक रहा', जब तक कि सुकेरचकिया मिस्ल के प्रमुख रणजीत सिंह ने अठारहवीं सदी के अन्तिम वर्षों में कुछ अधिक केन्द्रीकृत राज्य बनाने के प्रयास नहीं किए।

मराठे :

मराठा आंदोलन का विकास मध्यकालीन भारतीय इतिहास की सर्वाधिक उल्लेखनीय और विस्मयकारी घटनाओं में से है। ये मराठा आंदोलन एक बहुत

ही जटिल आंदोलन था, 'जिसमें सामाजिक–धार्मिक सुधार का पूर्ववर्ती आंदोलन और मराठा सरदारों के नेतृत्व में चलने वाले क्षेत्रीय स्वतंत्रता का आंदोलन दोनों मिलकर एक हो गए थे।'[30] इस आंदोलन के राजनीतिक, सामाजिक–धार्मिक तथा आर्थिक पहलुओं के बीच अंतर्विरोध थे, और इन अंतर्विरोधों के मूल विभिन्न सामाजिक समूहों के हितों में समाए हुए थे। मराठा समाज का वर्चस्वी तत्व मराठा सरदार थे, जिनकी सामाजिक–धार्मिक सुधार या किसानों के कल्याण में कोई दिलचस्पी नहीं थी। इनकी फिक्र उन्हें तभी होती थी जब इनसे उनके अपने हित सधते थे। शिवाजी की मृत्यु के बाद किसान उपेक्षित हो गए और राजनीतिक विकास तथा सामाजिक–आर्थिक सुधार के बीच की कड़ी कमजोर पड़ गई। मुगल प्रहारों से शिवाजी द्वारा बनाए गए राज्य की संरचना ध्वस्त हो गई और इससे विभिन्न मराठा सरदारों को एक प्रकार की छापापार लड़ाई में उतर जाने का अवसर मिल गया और यह लड़ाई वे अक्सर खुद अपने लिए अपनी इच्छानुसार लड़ते थे।

अठारहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में चल रहे सत्ता संघर्ष में मराठे प्रमुख दावेदार में थे। औरंगजेब की मृत्यु के बाद शिवाजी के प्रपौत्र शाहू को मुगल सम्राट बहादुरशाह प्रथम ने कारागार से मुक्त कर दिया। उसने सतारा को अपने राज्य का केन्द्र बनाया। राजाराम की पत्नी ताराबाई ने कोल्हापुर में अपने पुत्र शिवाजी द्वितीय को एक प्रतिद्वन्दी शासक के रूप में बैठा दिया। परिणामस्वरूप शाहू व ताराबाई के बीच गृहयुद्ध आरम्भ हो गया, जो 1714 ई0 तक चला। जिसने मराठा राज्य में दरार पैदा कर दी। शाहू 18 वर्षो (1689 ई0–1707 ई0) तक मुगल जेल में रहा था। उसे शासन प्रबंध की व्यवस्था का

समुचित ज्ञान नही था, अतः शासन–प्रबंध की देखभाल पेशवा को सौंप दी गई थी। 'मराठा राज्य एवं प्रभुत्व के विस्तार में पेशवाओं का अत्यंत महत्वपूर्ण योगदान है। पहले पेशवा के साथ ही यह पद वंशानुगत हो गया था।'[31]

इस कड़ी में बालाजी विश्वनाथ पहला पेशवा हुआ। उन्होंने पूना को केन्द्र बनाकर मराठा शक्ति का विस्तार किया। बालाजी विश्वनाथ एक मामूली राजस्व अधिकारी के पद से उन्नति करते–करते पेशवा बना था। उन्होंने न केवल अपने प्रतिद्वन्दी को एक–एक करके अपनी ओर मिलाया, बल्कि मुगलों के परस्पर वैमनस्य और विवादों का भी लाभ उठाया। दक्षिण के 6 सूबों–खानदेश, बरार, बीदर, बीजापुर, गोलकुण्डा और औरंगाबाद में चौथ एवं सरदेशमुखी वसूल करने का अधिकार प्राप्त किया। उसने सैय्यद बन्धुओं को हटाने में सहयोग दिया था। इस प्रकार बालाजी विश्वनाथ ने अपनी योग्यता, दूरदर्शिता और कूटनीतिज्ञता से शिवाजी के बाद मराठा राज्य को पुनः दृढ़ बनाया और उसे नवचेतना प्रदान की।

1720 ई0 में बालाजी विश्वनाथ की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र बाजीराव प्रथम पेशवा बना। इस समय उसकी आयु केवल 19 वर्ष की थी। निश्चय ही बाजीराव प्रथम एक महान विजेता था, जिसने मराठा शक्ति को भारत की अग्रिम पंक्ति में लाकर खड़ा कर दिया। उसकी सूझबूझ अद्भुत थी। जिससे मराठा राज्य का विस्तार हुआ।[32] उसने उत्तर में मालवा और गुजरात प्रदेश को भी जीता। बुन्देलखण्ड के भू–भाग पर भी अधिकार किया और दक्षिण में हैदराबाद से भी टक्कर ली। पालखेड़ के युद्ध में निजाम को हराकर दक्कन से चौथ व सरदेशमुखी के अधिकार प्राप्त किए। 1733 ई0 में जंजीरा

के सिद्दियों के विरूद्ध अभियान किया और उन्हें खदेड़ दिया। पुर्तगालियों को भी पराजित कर बसीन के प्रदेश प्राप्त किए।[33]

बाजीराव प्रथम के मुख्य संघर्ष में उसका दिल्ली अभियान था। 1737 ई0 में दिल्ली पर आक्रमण किया और दिल्ली सीमा के निकट महरौली में अपने खेमे गाड़ दिए, लेकिन वहाँ केवल लूटमार की। मुगल शासक ने निजामुलमुल्क को मदद के लिए बुलाया, लेकिन भोपाल के निकट निजामुलमुल्क की पराजय हुई और बाजीराव प्रथम को मालवा, नर्मदा एवं चम्बल का प्रदेश मिला। साथ ही युद्ध की क्षतिपूर्ति के रूप में मराठों ने प्रचुर धनराशि प्राप्त की। बाजीराव प्रथम के काल से ही दिल्ली में मराठों का प्रभाव और शक्ति का दबदबा शुरू हुआ।[34]

इन विजयों के अतिरिक्त बाजीराव प्रथम का एक प्रमुख कार्य मराठा संघ की स्थापना करना था। उसने अपने नेतृत्व में मराठा शक्ति को जोड़ने का अद्भुत प्रयास किया। उसने नागपुर के रघुजी भोंसलें, इंदौर के मल्हारराव होल्कर, बड़ौदा के पिल्लाजी गायकवाड़ और ग्वालियर के राणोजी सिन्धिया को मिलाकर मराठा–संघ बनाया। 1740 ई0 में बाजीराव प्रथम की मृत्यु हो गई।[35]

तीसरा पेशवा बालाजी बाजीराव (1748 ई0–1761 ई0) हुआ। इस समय उसकी आयु केवल 18 वर्ष की थी। 1748 ई0 में शाहू की मृत्यु के बाद उसकी शक्ति बढ़ गई। वह अब वास्तविक रूप से पेशवा और शासक दोनों था। अपने पिता की भाँति वह भी एक महान सेनानायक और विजेता था। उसने भी उत्तर और दक्षिण में कई सैनिक अभियान किए। मालवा, गुजरात और बुंदेलखण्ड पर उसका प्रभुत्व बना रहा। उसने कई राजपूत शासकों से कर वसूल किया।

मराठा सरदार रघुजी भोंसले ने बंगाल के नवाब अलीवर्दी खाँ पर आक्रमण किए और उसे उड़ीसा का प्रदेश देने को मजबूर किया। उसने बंगाल, बिहार से कर और चौथ प्राप्त की। उसने 1757 ई0 में दिल्ली पर भी अपना आधिपत्य स्थापित किया। अगले वर्ष सरहिन्द और लाहौर में भी अपना प्रभाव कायम किया और पंजाब के शासक अहमदशाह के पुत्र तैमूरशाह को वहा से भगा दिया। मराठों ने अटक पर विजय प्राप्त की।

दक्षिण में 1760 ई0 में उसने हैदराबाद के निजाम को हराया और बीजापुर व औरंगाबाद के समस्त प्रदेश, बीदर का कुछ भाग, दौलताबाद का किला और अन्य कई किले प्राप्त किए। यहाँ से उसे भारी कर प्राप्त हुआ। परन्तु उसका निर्णायक युद्ध 1761 ई0 में अफगानिस्तान के शासक अहमदशाह अब्दाली के साथ पानीपत के मैदान में हुआ। वास्तव में यह युद्ध न केवल मराठों के लिए अपितु सम्पूर्ण भारत के लिए महत्वपूर्ण था। इस युद्ध में मराठों की हार हुई तथा उनका सम्पूर्ण भारत पर राज्य करने का स्वप्न मिट्टी में मिल गया।

कर्नाटकः

कर्नाटक भी मुगलों के दक्षिण सूबे का एक भाग था जो हैदराबाद के निजामुलमुल्क के अन्तर्गत ही था। व्यवहारिक दृष्टि से कर्नाटक का नवाब निजामुलमुल्क के प्रभाव से मुक्त होना चाहता था। मुगल सम्राट बादुरशाह प्रथम ने कर्नाटक का नवाब सआदत उल्ला खाँ को नियुक्त किया। कुछ समय बाद सआदत उल्ला खाँ ने अपने भतीजे दोस्त अली को निजाम की अनुमति के बिना यहाँ का नवाब बना दिया, परन्तु वह 1740 ई0 में मराठों से युद्ध करते

हुए मारा गया। उसके पुत्र सफदरअली ने मराठों से सन्धि कर ली, परन्तु 1742 ई0 में उसका भी वध कर दिया गया। शीघ्र की कर्नाटक की नवाबी का प्रश्न अंग्रेजों और फ्रांसीसियों में सत्ता–संघर्ष का मुख्य मुद्दा बन गया, जो कर्नाटक के युद्ध के रूप में प्रकट हुआ।

मैसूरः

विजयनगर साम्राज्य के पतन के बाद मैसूर का राज्य वडियार वंश के अन्तर्गत हो गया। अठारहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में यहाँ का शासक चिक्का कृष्णराज था। वह केवल नामात्र का शासक था, वास्तविक सत्ता उसके दो मंत्रियों नंदराज (राजस्व तथा वित्त विभाग) और देवराज (मुख्य सेनापति) के हाथों में थी। दक्षिण में निजामुलमुल्क, मराठों, अंग्रेजों तथा फ्रांसीसियों के मध्य हुए चतुष्कोणीय संघर्ष ने मैसूर राज्य को भी अपने अखाड़े में ला खड़ा किया। मराठों ने 1753 ई0, 1754 ई0 तथा 1759 ई0 में मैसूर पर आक्रमण किये। देवराज भी इन शक्तिशाली आक्रान्ताओं का प्रतिरोध करने में असफल रहा। ऐसे समय में एक साधारण सैनिक किन्तु सैनिक प्रतिभा का धनी हैदरअली सामने आया और 1761 ई0 तक वह मैसूर का वास्तविक शासक बन बैठा।

उत्तर–पश्चिम से विदेशी आक्रमणः

नादिरशाह का आक्रमण (1738 ई0–1739 ई0) मुहम्मदशाह के शासनकाल में मुगल साम्राज्य के लिए एक बहुत बड़ा झटका था, जिसने मुगल साम्राज्य की नींव को जर्जरित कर दिया। नादिरशाह एक महत्वाकांक्षी शासक था उसने अपने पड़ोस में अपने राज्य का विस्तार करना चाहा। उसका पहला

लक्ष्य कंधार को जीतना था क्योंकि उसके साम्राज्य की शान्ति कभी भी भंग हो सकती थी। इसके बिना वह सफवी वंश का पूरा उत्तराधिकारी भी नहीं कहला सकता था। उसने कंधार के अफगान शासकों को अकेला करने की इच्छा से मुगल सम्राट मुहम्मदशाह को लिखा कि कंधार के अफगान शासकों को काबुल में शरण नहीं मिलनी चाहिए। मुहम्मदशाह ने ऐसा विश्वास दिलाया परन्तु नादिरशाह ने 1738 ई0 में कंधार पर आक्रमण किया तो वहाँ के कुछ अफगानों ने गजनी और काबुल में शरण ले ली। नादिरशाह के सैनिकों ने मुगल साम्राज्य की सीमाओं का आदर किया और अफगान भगोड़ों का काबुल और गजनी में पीछा नहीं किया। परन्तु उसने एक दूत दिल्ली भेजा। इस दूत और उसके साथियों की मुगल सैनिकों ने जलालाबाद में हत्या कर दी। 'जिस अवहेलना से मुगल सैनिकों ने नादिरशाह के दूतों के साथ व्यवहार किया था, उसी को नादिरशाह ने भारत पर आक्रमण का कारण बना लिया।'[36]

नादिरशाह भारत की राजनीतिक दशा से परिचित था। वह भारत की धन सम्पदा पाने के लिए भी लालायित था। वह दिल्ली के शासक की अयोग्यता, दरबार की परस्पर फूट एवं साम्राज्य में व्याप्त भ्रष्टाचार और सैनिक कमजोरियों से अवगत था। नादिरशाह ने मुगल सम्राट से अपने राज्य में विद्रोही अफगानों को शरण न देने के लिए कहा, पर मुगल सम्राट ने कोई परवाह नहीं की। अतः नादिरशाह ने द्रुतगति से अफगानिस्तान पर आक्रमण करके उसे विजित कर लिया और दिल्ली की ओर बढ़ा।

नादिरशाह के इस तीव्रगामी आक्रमण से मुगल सम्राट घबरा गया। 80,000 सैनिक, निजामुलमुल्क, कमरूद्दीन और खान दौरा को साथ लेकर वह

आक्रमणकारियों से टक्कर लेने चल पड़ा। करनाल का युद्ध केवल तीन घण्टे तक चला। खान दौरा युद्ध में मारा गया और सआदत खाँ बन्दी बना लिया गया। 20 मार्च, 1739 ई0 को वह दिल्ली पहुँचा। नादिरशाह के नाम का खुतबा पढ़ा गया और सिक्के जारी किये गए। एक प्रकार से मुगल राज्य समाप्त हो गया और फारसी राज्य आरम्भ हो गया। 11 मार्च को दिल्ली में यह अफवाह फैल गई कि नादिरशाह का वध कर दिया गया है तथा इसके फलस्वरूप नगर में विद्रोह हो गया। और नादिरशाह के 3000 सैनिक मार दिए गए। इस पर नादिरशाह ने आम नर–संहार की आज्ञा दे दी। लगभग 20,000 नर–नारियों को मौत के घाट उतार दिया गया। दिल्ली के इस नरसंहार की स्मृति भारतीय इतिहास में आज भी ताजा है।

नादिरशाह दिल्ली में लगभग दो मास रहने के बाद 5 मई, 1739 ई0 को ईरान के लिए चला गया। इस बीच उसने दिल्ली को अधिकाधिक लूटने का प्रयास किया। समस्त अमीरों और जनता को इसमें योगदान देने को कहा गया। सआदत खाँ को स्पष्ट कहा गया कि यदि 20 करोड़ रूपया एकत्रित नहीं हुआ तो उसे शारीरिक यातना दी जाएगी। उसने विष खा लिया। सआदत खाँ के उत्तराधिकारी सफदरजंग ने 2 करोड़ रूपया दिया और नादिरशाह लगभग 30 करोड़ रूपया नकद और सोना, चाँदी, हीरे, जवाहरात के अतिरिक्त 100 हाथी, 7,000 घोड़े, 10,000 ऊँट, 100 हीजड़े, 130 लेखपाल, 200 उत्तम लुहार, 300 राज, 100 संगतराश और 200 बढ़ई भी ले गया। शाहजहाँ का तख्तेताऊस जिसका मूल्य एक करोड़ रूपये था उसे भी अपने साथ ले गया। मुगल सम्राट को अपनी पुत्री का विवाह नादिरशाह के पुत्र नासिरूल्लाह मिर्जा

से करना पड़ा। इसके अतिरिक्त कश्मीर तथा सिन्ध नदी के पश्चिमी प्रदेश भी नादिरशाह को देने पड़े। थट्टा का प्रान्त और उसके अधीनस्थ बन्दरगाहें भी दी गई। पंजाब के गवर्नर ने 20 लाख रूपया वार्षिक कर देना स्वीकार किया और यह भी वचन दिया कि नादिरशाह की सिन्ध के पार सेना को शिकायत का कोई अवसर नहीं देगा।[37]

नादिरशाह ने मुहम्मदशाह को पुनः मुगल सम्राट घोषित कर दिया, खुतबा पढ़ने और सिक्के चलाने का भी अधिकार लौटा दिया। प्रस्थान से पूर्व नादिरशाह ने मुहम्मदशाह को कुछ सुझाव दिए और दिल्ली के लोगों को उसकी आज्ञा मानने का आदेश दिया। दिल्ली राज्य को आड़े समय में सैनिक सहायता का वचन भी दिया।[38] नादिरशाह के इस आक्रमण से मुगल साम्राज्य की प्रतिष्ठा को भारी ठेस पहुँची। धन–जन की भारी हानि हुई। मुगल सेना की कमजोरी शीघ्र ही मराठों और विदेशी कम्पनियों की दृष्टि में आ गयी।

अहमदशाह अब्दाली एक अच्छे कुल का अफगान पदाधिकारी था। नादिरशाह उसका बहुत आदर करता था। उसने एक बार कहा भी था कि 'मैंने तूरान, फारस या हिन्द में कोई आदमी ऐसा नहीं देखा जो योग्यता और चरित्र में अहमदशाह अब्दाली की बराबरी कर सके।'[39] 1747 ई0 में नादिरशाह का वध कर दिए जाने पर अहमदशाह अब्दाली कंधार और काबुल का स्वतन्त्र शासक बन बैठा और उसने अपने सिक्के भी चलाए। शीघ्र ही उसने काबुल को जीत लिया और आधुनिक अफगान राज्य की नींव रखी। उसने 50,000 की सेना एकत्रित की और नादिरशाह के वैध उत्तराधिकारी के रूप में पश्चिमी

पंजाब पर अपना दावा किया। उसने पंजाब पर आक्रमण किया और पानीपत का तीसरा युद्ध लड़ा।

1748 ई0 में उसका पंजाब पर प्रथम आक्रमण, असफल रहा। परन्तु वह सुगमता से हार मानने वाला नहीं था 1749 ई0 में उसने पुनः आक्रमण किया और पंजाब के गवर्नर मुईनुलमुल्क को परास्त किया। परन्तु 14,000 रूपया वार्षिक कर के वचन देने पर वह लौट गया। नियमित रूप से यह रूपया न मिलने पर उसने 1752 ई0 में पंजाब पर तीसरा आक्रमण किया तथा पंजाब तथा सिन्ध प्रदेश पर कब्जा कर लिया। 1756 ई0 में वह चौथी बार आक्रमण करते हुए दिल्ली तक बढ़ गया और मथुरा व आगरा की लूटमार की। वापस लौटते समय उसने इमादुलमुल्क को मुगल वजीर तथा नजीबुद्दौला को मीरबख्सी और प्रतिनिधि बनाया। पानीपत के तीसरे युद्ध के अतिरिक्त 1767 ई0 तक अहमदशाह अब्दाली ने निरन्तर आक्रमण किये। अहमदशाह अब्दाली के आक्रमणों से मुगल साम्राज्य के पतन की गति और भी तेज हो गई। उसके बार–बार आक्रमण करने से मुगल साम्राज्य का खोखलापन और भी स्पष्ट हो गया और देश में अराजकता और गड़बड़ी फैल गई। अतः स्वाभाविक रूप से इस स्थिति ने अन्य शक्तियों को आक्रमण के लिए प्रेरित किया।

पानीपत का तृतीय युद्ध भारतीय इतिहास की एक युगान्तकारी घटना है। यह युद्ध अफगान नरेश अहमदशाह अब्दाली और मराठों के मध्य लड़ा गया, जिसमें मराठों की पूर्णतया हार हुई। इस युद्ध के उपरान्त मराठे, जो औरंगजेब की मृत्यु के पश्चात् मुगलशाही के पतन पर एक नवशक्ति के रूप में

उभर रहे थे, अपनी अजेयता एवं गरिमा खो बैठे। इसके साथ ही भारत में ब्रिटिश सत्ता का मार्ग प्रशस्त हो गया।

इस युद्ध को अठारहवीं शताब्दी के भारत की संक्षिप्त झाँकी भी कहा जा सकता है, जिसमें जहाँ एक ओर भारतीय सैनिकों की निर्बलता और राष्ट्रीय भावना की कमी स्पष्ट झलकती है। वहीं ऐसी शक्तियों का भी पर्दाफाश होता है, जो विदेशी आक्रान्ताओं से समझौता कर रहीं थी और उनके आगमन के लिए उत्सुक थीं। मुगल साम्राज्य तो अब एक बड़े नाम की छायामात्र रह गया था।

निष्कर्षतः अठारहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में भारत की राजनीतिक दशा अत्यधिक कमजोर एवं पतनोन्मुख थी। मुगल साम्राज्य अपनी प्रतिष्ठा एवं गरिमा खो चुका था। चारों ओर राजनीतिक अव्यवस्था की स्थिति व्याप्त थी।

****

सन्दर्भ

1. बी0एल0 ग्रोवर व यशपाल–आधुनिक भारत का इतिहास, पृ0 13, 14.
2. बी0एल0 ग्रोवर व यशपाल–आधुनिक भारत का इतिहास, पृ0 21–22.
3. ए0सी0 बनर्जी एवं डी0के0 घोष–ए कॉपरिहेन्सिव हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, भाग–9, पृ0 1.
4. एस0आर0 शर्मा–भारत में मुगल साम्राज्य, पृ0 432.
5. बी0एल0 ग्रोवर व यशपाल–आधुनिक भारत का इतिहास, पृ0 2.
6. बी0एल0 ग्रोवर व यशपाल–आधुनिक भारत का इतिहास, पृ0 2.
7. उपर्युक्त, पृ0 3.
8. शेखर बंधोपाध्याय–पलासी से विभाजन तक, पृ0 18
9. शेखर बंधोपाध्याय–पलासी से विभाजन तक, पृ0 19, 20.
10. वही, पृ0 20.
11. शेखर बंधोपाध्याय–पलासी से विभाजन तक, पृ0 21.
12. बी0एल0 ग्रोवर व यशपाल–आधुनिक भारत का इतिहास, पृ0 7.
13. ए0सी0 बनर्जी एवं डी0के0 घोष–ए कॉपरिहेन्सिव हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, भाग–9, पृ0 29.
14. शेखर बंधोपाध्याय–पलासी से विभाजन तक, पृ0 14
15. वही, पृ0 14.
16. शेखर बंधोपाध्याय–पलासी से विभाजन तक, पृ0 17.
17. वही, पृ0 17.
18. वही, पृ0 33, 34.

19. वही, पृ0 34.

20. जी0एस0 औझा—जोधपुर राज्य का इतिहास, भाग—2, पृ0 538—553.

गोपीनाथ शर्मा—राजस्थान का इतिहास, पृ0 462—463.

21. गोपीनाथ शर्मा—राजस्थान का इतिहास, पृ0 463.

22. गोपीनाथ शर्मा—राजस्थान का इतिहास, पृ0 389.

23. वही, पृ0 391.

24. सेलेक्शन ऑफ पेशवा दफ्तर, जिल्द 14, पृ0 21, 25, 29.

24(i). गोपीनाथ शर्मा—राजस्थान का इतिहास, पृ0 393.

25. बी0एल0 ग्रोवर व यशपाल—आधुनिक भारत का इतिहास, पृ0 9.

26. पी0सी0 चान्दावत—महाराजा सूरजमल और उनका युग, पृ0 55.

27. शेखर बंधोपाध्याय—पलासी से विभाजन तक, पृ0 28

28. उपर्युक्त, पृ0 28.

29. उपर्युक्त, पृ0 28.

30. सतीश चन्द्र, मध्यकालीन भारत दो, पृ0 512

31. ए0सी0 बनर्जी एवं ए0के0 घोष—ए कॉपरिहेन्सिव हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, भाग—9, पृ0 406.

32. वही, पृ0 10.

33. वही, पृ0 11.

34. ए0सी0 बनर्जी एवं ए0के0 घोष—ए कॉपरिहेन्सिव हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, भाग—9, पृ0 27.

35. उपर्युक्त, पृ0 27.

36. उपर्युक्त, पृ0 28.

37. विद्याधर महाजन–आधुनिक भारत का इतिहास, पृ0 94–95.

38. उपर्युक्त, पृ0 95.

39. ए0सी0 बनर्जी एवं ए0के0 घोष–ए कॉपरिहेन्सिव हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, भाग–9, पृ0 147–152.

****

जाट शक्ति का उदय

'जाट', दिल्ली, मथुरा क्षेत्र में रहने वाले एक काश्तकार खेतिहर पशुपालक जाति थे। अपने जमींदारों के साथ जातीय सम्बन्ध ने बिरादरी में एकजुटता को जन्म दिया और ये लोग जहाँगीर के समय से ही मुगल साम्राज्य के खिलाफ विद्रोह करने लगे। जाट किसानों का पहला विद्रोह 1669 में हुआ और उसे कुचलने के लिए स्वयं बादशाह को जाना पड़ा। 1686 में जाटों ने फिर विद्रोह किया और इस बार मुगलों के शाही कमानदार किशनसिंह कछवा को उनके खिलाफ कुछ सफलता मिली, पर वह उनकी शक्ति को पूरी तरह तोड़ने में नाकाम रहे।[1]

अठारहवी शताब्दी के पूर्वार्द्ध के कालखण्ड के भारतीय इतिहास में अनेक क्षेत्रीय शक्तियों के उदय के साक्ष्य उपलब्ध हैं। अफगान, सिक्ख तथा जाट इनमें प्रमुख थे जिनकी शक्ति का निरन्तर विकास हो रहा था। इनमें प्रत्येक जमींदार राजा होना चाहता था और प्रत्येक राजा महाराजा बनने को आतुर था।[2] इन शक्तियों में प्रमुख रूप से जाट जो औरंगजेब की कट्टर धार्मिक नीति के पूर्व तक आगरा, मथुरा, अलीगढ़, मेरठ के पश्चिम में मेवात की पहाड़ियों आदि क्षेत्रों में शान्तिपूर्वक जीवन व कृषि कार्य में व्यस्त रहते थे।[3] लेकिन औरंगजेब की कट्टर धार्मिक नीति का उसके कुछ अधिकारियों ने खुल कर प्रयोग किया। मथुरा का फौजदार अब्दुन्नबी खाँ ने बड़े उत्साह के साथ मूर्ति पूजा का अन्त कर देने की अपने सम्राट की नीति का पालन किया। उसने केशवदेव मन्दिर के भग्नावशेषों पर मथुरा शहर के बीचों–बीच एक

मस्जिद बनवाई, तत्पश्चात उसने केशवदेव के मन्दिर को दाराशिकोह द्वारा उपहार में दिया हुआ नक्काशीदार पत्थर का जंगला भी वहाँ से हटवा दिया।[4]

उसकी इस कट्टर धार्मिक नीति ने स्वतंत्र और शांति की भावना से जीने वाले जाटों को विद्रोह पर उतारू कर दिया। जाट किसानों का हृदय मुगलों के विरूद्ध एक बारूद के ढेर के समान हो गया था, जिसमें आग की चिंगारी रखने की देरी थी और यह कार्य तिलपट के जमींदार गोकला जाट ने किया। गोकला जाट ने गाँव–गाँव घूम कर मुगलों के विरोध में जाट किसानों का एक संगठन बनाया, और तब 1669 ई0 में तिलपट के जमींदार गोकला जाट के नेतृत्व में जाट किसानों ने मुगलों के विरूद्ध मुक्ति–संग्राम छेड़ दिया,[5] जो 52 वर्ष तक लगातार चलता रहा। उसे दबाने के लिए मथुरा का फौजदार अब्दुन्नबी खाँ बसरा गाँव की ओर चला। परन्तु 10 मई के लगभग वह इस युद्ध में गोली से मारा गया।[6] गोकला जाट ने सादाबाद का परगना लूट लिया। धीरे–धीरे यह जाट विद्रोह मथुरा के पड़ासी जिले आगरा में भी फैल गया।[7] इस प्रकार स्थिति विषम से विषमतर होती चली गयी।

मथुरा के फौजदार अब्दुन्नबी खाँ के इस प्रकार मारे जाने पर जाटों के दमनार्थ औरंगजेब ने सफशिकन खाँ और उसके बाद सैय्यद हसनअली खाँ को मथुरा का फौजदार नियुक्त किया।[8] फिर भी सन् 1669 ई0 के पूरे वर्ष भर मथुरा में अशांति और उपद्रव की धूम मची रही। सफशिकन खाँ के असफल होने पर सैय्यद हसनअली खाँ अपने सहयोगी शेख रजीउद्दीन के साथ विशाल शाही सेना के साथ विद्रोही नेता गोकला जाट का दमन करने के प्रयास में लगा रहा। जाट नेता गोकला भी अपनी 20 हजार किसान सेना के साथ शाही

सेना का सामना करने के लिए आगे बढ़ा। फलतः 1670 ई0 की जनवरी के प्रारम्भ में तिलपट से बीस मील दूर स्थान पर दोनों सेनाओं के मध्य भयंकर लड़ाई हुई, जिसमें बहुत मार–काट के बाद हसनअली खाँ ने गोकला को पराजित कर दिया। गोकला भाग कर तिलपट चला गया।[9] इसके उपरांत शाही सेना ने तिलपट का घेरा डाला। तीन दिन के घमासान युद्ध के बाद शाही सेना तिलपट पर अधिकार करने में सफल हो गयी।

इस युद्ध में चार हजार शाही सैनिक और पाँच हजार जाट सैनिक मारे गये। जाट नेता गोकला अपने कुटुम्बियों और सात हजार साथियों के साथ कैद कर लिया गया था। बन्दी गोकला जाट को बादशाह के पास भेज दिया गया, जहाँ उसकी निर्मम हत्या करवा दी गई, ताकि इस क्रूर दण्ड से विद्रोही जाटों में भय व्याप्त हो जाय।[10] गोकला के लड़के व लड़की को मुसलमान बना दिया गया। उसकी लड़की की शादी गुलाम शाहकुली के साथ कर दी गयी और गोकला जाट के लड़के का नाम फाजिल खाँ रखा और उसे जवाहर खाँ को सौंप दिया, जिसकी देख–रेख में उसका पालन–पोषण हुआ।[11]

हसनअली खाँ के इन प्रयासों और उसकी सफलताओं से मनोवांछित परिणाम निकला। पूरे जिले में शांति स्थापित हो गई, परन्तु यह सब कुछ समय के लिए ही रह पाया। इसी समयान्तर में सन् 1681 ई0 में औरंगजेब दक्षिण चला गया और वहीं के युद्धों में उलझ गया, जो उसकी मृत्यु पर्यन्त चलते रहे। अतः नर्मदा से उत्तर के सारे ही पुराने समृद्ध सूबे बहुत ही साधारण योग्यता वाले अमीरों को सौंपे गये और उनके साथ सेना भी बहुत थोड़ी रखी गयी। इसके साथ ही व्यापारियों के माल से लदे हुए साम्राज्य की आमदनी का

रूपया, सेना के लिए अत्यावश्यक युद्ध सामग्री और अमीरों के कुटुम्बों तथा माल–असबाब को लेकर सुदूर दक्षिण को जाने वाले लम्बे–लम्बे काफिले, उत्तरी भारत के रास्तों पर से लगातार गुजरते रहते थे। दिल्ली से आगरा और धौलपुर तथा आगे मालवा में होकर दक्षिण को जाने वाली शाही सड़क जाटों के प्रदेशों से होकर गुजरती थी। इन वीर और मेहनती जाटों को लूटमार न करने देने के लिए शक्तिशाली सेना के आक्रमण का भय ही एक मात्र उपाय था।[12]

औरंगजेब के दक्षिण चले जाने से उत्तर भारत में जाटों को विद्रोह का पुनः अवसर मिला। गोकला के खून का बदला लेने के लिए 1685 ई0 में सनसनी के जमींदार भज्जा के पुत्र राजाराम ने जाट संगठन की बागडोर सम्भाली और उसने सोगर के जमींदार रामचेहरा को भी अपना मित्र बना लिया। अब इन दोनों ने मिलकर व्यवस्थित सेना तैयार की। सड़क व रास्तों से बहुत दूर जंगलों में उन्होंने कई छोटी–छोटी गढ़ियां बना ली थीं, इन गढ़ियों के चारों ओर मिट्टी की मोटी–मोटी दीवारें बना कर उन्होंने उन्हें बहुत सुदृढ़ बना लिया था जिससे इन दीवारों पर गोला–बारी का भी कोई असर न होने पाये। तदुपरान्त उन्होंने आगरा–दिल्ली, आगरा–ग्वालियर, तथा मालवा को जाने वाले शाही मार्गों की ओर कूच किया और तीव्र रूप से लूटमार आरम्भ कर दी।[13] ईश्वरदास के अनुसार ''उसकी इस लूटमार के कारण आने–जाने में मार्ग इतने बंद हो गये थे कि पक्षियों को भी अपने पर फड़फड़ाने की जगह नहीं रही।''[14]

आगरा का सूबेदार सफी खाँ राजाराम जाट के इन उपद्रवों को दबा नहीं सका। इस जिले के कई गाँवों को जाटों ने लूटा। कुछ दिनों बाद राजाराम ने धौलपुर के पास तूर्रानी सेनानायक अगर खाँ पर आक्रमण कर उसे मार डाला, जो बीजापुर के पास पड़े शाही शिविर से चल कर काबुल की ओर जा रहा था।[15] राजाराम की इस धृष्टतापूर्ण सफलता से औरंगजेब बहुत अधिक क्रोधित हुआ और दिसम्बर, 1687 ई0 में उसने जाटों के विद्रोह के दमन के लिए शाहजादा बेदारबख्त को सेना का प्रधान सेनापति बनाकर भेजा। किन्तु शाहजादा के पहुँचने से पहले ही कई घटनाऐं घट चुकी थीं। राजाराम ने मीर इब्राहिम पर आक्रमण किया जो कि पंजाब की सूबेदारी सम्भालने जा रहा था। तदुनन्तर उसने सिकन्दरा में बने हुए अकबर के मकबरे को लूटा और ईश्वरदास के अनुसार 'सम्पूर्ण मकबरे को तोड़–फोड़ कर वहाँ के कालीन, सोने चांदी के बर्तन तथा कदील आदि सब कुछ उठाकर ले गया।'[16] मनूची भी लिखता है कि ''वहाँ जड़े हुए बहुमूल्य रत्नों तथा सोने–चाँदी के बर्तन लूटे गये और जो कुछ भी वे उठा कर नहीं ले जा सके उसे नष्ट–भ्रष्ट कर डाला। मकबरे को खोदकर अकबर की हड्डियों को भी बाहर निकाला और क्रुद्ध हो आग में डालकर उन्हें भी जला दिया।''[17]

जाटों के इन कृत्यों ने शाहजादा को भयभीत कर दिया। अतः मथुरा पहुँचने पर भी उसने जाटों पर कोई आक्रमण नहीं किया था औरंगजेब से और सैनिक सहायता भेजने के लिए आग्रह करता रहा। इसी समय सन् 1688 ई0 में चौहानों और शेखावतों के मध्य युद्ध प्रारम्भ हो गया। मेवात का मुगल फौजदार इस युद्ध में शेखावतों की ओर से सम्मिलित हो गया और राजाराम

जाट भी चौहानों की सहायतार्थ इस युद्ध में जा पहुँचा। जब दोनों पक्षों में घोर युद्ध चल रहा था, उसी समय विरोधी दल वालों ने राजाराम को गोली मार दी। जिससे जुलाई 4, 1688 ई0 को राजा की मृत्यु हो गई।[18] किन्तु राजाराम की मृत्यु से भी यह जाट विद्रोह शांत नहीं हुआ, परन्तु कुशल नेतृत्व के अभाव में विद्रोही जाट किसानों को तब कुछ समय के लिए अज्ञात–वास अवश्य करना पड़ा। जाटों का पूर्ण दमन करने के लिए आमेर के नये कछवाहा राजा बिशनसिंह को औरंगजेब ने मथुरा का फौजदार नियुक्त किया और जाटों का प्रदेश सनसनी भी उसे जागीर में दे दिया।[19]

कछवाहा राजा बिशनसिंह विशाल शाही सेना के साथ सनसनी की ओर रवाना हुआ और सनसनी से 10 मील दूर उसने शाही सेना का पड़ाव डाला लेकिन जाटों ने मुगल सेना को परास्त करने के लिए नई युद्ध नीति का अपनाया। उन्होंने अब छापामार युद्ध प्रारम्भ कर दिया और अवसर देखकर वे शाही सेना पर रात्रि में आक्रमण करने लगे।[20]

यही नहीं उनके इस प्रकार के युद्ध से शाही सेना में रसद पहुँचना और तालाब से पानी भरकर ले जाना भी कठिन हो गया। ईश्वरदास के अनुसार ''ऐसी परिस्थिति हो गयी थी कि व्यक्ति भूख से निढ़ाल हो गये और घास के अभाव में पशु ऐसे अशक्त हो गये थे कि उनके लिए जमीन से उठना भी कठिन हो गया था।''[21] तथापि राजा बिशनसिंह सनसनी का घेरा डाले दृढ़ता से डटा रहा। उसके साहस और धैर्य से प्रसन्न हो विजय श्री ने भी उसी के गले में वरमाला डाली। सुरंग से दुर्ग की एक ओर की दीवार को उड़ा दिया गया। तब दोनों सेनाओं में तीन घंटों तक घमासान यद्ध हुआ। विजय की

आशा छोड़कर जाट सेना जंगलों में भाग गयी। इस युद्ध में 1500 जाट सैनिक मारे गये व घायल हुए और 200 शाही सैनिक मारे गये तथा 700 राजपूत सैनिक मरे या आहत हुए।[22] अगले वर्ष अचानक आक्रमण कर राजा बिशनसिंह ने मई 21, 1691 ई0 के दिन जाटों के दूसरे सुदृढ़ दुर्ग सोगर पर भी अधिकार कर लिया।[23]

इतने पर भी जाट मुक्ति–वाहिनी का पूर्ण दमन कर पाना राजा बिशनसिंह के लिए असम्भव हो गया, क्योकि उधर राजाराम के बाद जाटों के सुयोग्य नेता के रूप में चूड़ामन जाट उभरने लगा था, जिसने कालान्तर में जाट शक्ति को चरम सीमा पर पहुँचा दिया। चूड़ामन ने गाँव–गाँव घूम कर जाट सेना को संगठित करना प्रारम्भ किया। कुछ ही समय में उसने 500 घुड़सवारों और 1000 पैदलों की सेना एकत्र कर ली। नन्दा जाट भी 100 घुड़सवारों के साथ उससे मिल गया। सोंख व सोगर के जाट भी उसके मित्र बन गये। इस प्रकार उसने अपनी वाक्पटुता और व्यक्तित्व के सहारों विद्रोहियों का एक दृढ़ संगठन बना लिया। तदुपरान्त सनसनी के मुगल किलेदार पर आक्रमण किया। मुगल किलेदार युद्ध में मारा गया। 1704 ई0 में सनसनी पर चूड़ामन का अधिकार हो गया। अक्टूबर, 1704 ई0 में जब सनसनी पर पुनः मुगलों का अधिकार हो गया, तब तो उसने शाही परगनों में लूटमार प्रारम्भ कर दी। दक्षिण में औरंगजेब के पास चूड़ामन के इन उपद्रव व लूटमार के समाचार बराबर पहुँचने लगे, तब उसने इसका दमन करने के लिए सैनिक कार्यवाहियां भी की। लेकिन अपने जीवन काल में वह जाटों का दमन नहीं कर पाया।[24]

1704 ई0 में औरंगजेब की मृत्यु पर उसके पुत्रों आजम और मुअज्जम में जब उत्तराधिकार का संघर्ष प्रारम्भ हो गया, तब चूड़ामन भी इस युद्ध में आजम की सेना के साथ सम्मिलित हो गया और जब आजम के पराजित होने के लक्षण दिखाई देने लगे तब उसने आजम के डेरे पर धावा बोल दिया और उसका सारा सामान लूट लिया। मुअज्जम बहादुरशाह के नाम से जब गद्दी पर बैठा तो उसने चूड़ामन की शक्ति को जान कर, उसे 1500 जात और 500 सवार का मनसब दिया तथा उसे साम्राज्य का एक जागीरदार बना दिया।[25] फरवरी 24, 1712 ई0 को बहादुरशाह की मृत्यु हुई और तब उसका उत्तराधिकारी जहाँदरशाह अयोग्य निकला। अतः डॉ0 कानूनगो के अनुसार ''एक विजेता विद्रोही, जिसने अपने पौरूष तथा भयाक्रान्त बल से साम्राज्य की सीमाओं में शक्तिशाली जागीर बनाई थी और अनेकों गांव अपने कब्जे में कर लिये। वह सम्राट जहाँदरशाह के सैनिक बलहीन शासनकाल में वह कभी भयभीत नहीं हो सकता था और न सर्वोच्च सत्ता के प्रति अपनी भक्ति ही प्रदर्शित कर सकता था।''[26] लाहौर के गृहयुद्ध से लौट कर उसने अपनी सैनिक शक्ति को सुदृढ़ किया और उसने पुनः लूटमार प्रारम्भ कर दी। दिल्ली से जयपुर की सीमा तक और मेवात से चम्बल तक के सभी परगनों में लूटमार मचा दी। इसी समय फर्रूखसियर जहाँदरशाह के विरोध में अपनी सेना के साथ जब पटना से रवाना हुआ, तब भयभीत जहाँदरशाह ने चूड़ामन को अपने सहयोग के लिए आमन्त्रित किया था। अतः जनवरी 10, 1713 ई0 के गृहयुद्ध में वह सम्मिलित हुआ और जब युद्ध प्रचण्ड रूप में चल रहा था, तब उसने निःसंकोच दोनों पक्षों को लूटा और शाही लूट के माल के साथ वह अपने निवास पर वापस लौट गया।[27]

फर्रूखसियर ने गद्दी पर बैठने के बाद जाट शक्ति का दमन करने के लिए मार्च, 1713 ई0 में राजा छबीलाराम को आगरा का सूबेदार बना कर भेजा। जाट शक्ति के दमन में असफल होने पर छबीलाराम के स्थान पर खाने दौरा शमशुद्दौला की नियुक्ति कर दी गई,[28] जिसने जाटों के साथ मित्रता बनाये रखना ही उचित समझा और उसी के प्रयत्नों से चूड़ामन 400 सवारों के साथ अक्टूबर, 1713 ई0 में दिल्ली में सम्राट के समक्ष उपस्थित हुआ। सम्राट ने जाट सरदार को बहादुर खाँ की उपाधि से विभूषित किया। इसके साथ ही राव का पद देकर उत्तर में दिल्ली से बाहर बाराहमूला से लेकर दक्षिण में चम्बल तक तथा पूर्व में आगरा से लेकर पश्चिम में आमेर राज्य की सीमाओं तक की राहदारी का भार सौंपा। राहदारी का अधिकार देकर बादशाह ने उसकी लूट–पाट को कानूनी मान्यता दे दिया। कानूनगों के शब्दों में ''इस प्रकार भेड़िये को भेड़ों की रखवाली के लिए नियुक्त किया गया।''[29] कुछ समय बाद चूड़ामन को अखेगढ़ (नदबई), हैलक, नगद (बरोदरमेव), कठूमर, अऊमलाह, अधापुर, बराह, इकरन तथा रूपवास की जागीर भी मिल गयी। लेकिन इससे चूड़ामन संतुष्ट नहीं हुआ। वह अन्य मुस्लिम जागीरदारों के अधीन क्षेत्रों में भी हस्तक्षेप करने लगा। व्यापारियों से मनमानी राहदारी वसूल की और मौजाबाद, कामार, सहार आदि परगनों में लूटमार शुरू कर दी।[30] चूड़ामन के इन भयंकर उपद्रवी कार्यों को देखकर सम्राट फर्रूखसियर ने आमेर नरेश सवाई जयसिंह को चूड़ामन के विरूद्ध फौजी अभियान के लिए आदेश दिया लेकिन सम्राट फर्रूखसियर और सवाई बदनसिंह में मतभेद हो जाने से बदनसिंह आमेर नरेश सवाई जयसिंह की शरण में चला गया। तब तो इस गृहकलह से खिन्न होकर चूड़ामन ने आत्महत्या कर ली।[31] इसके बाद सवाई

जयसिंह ने बदनसिंह की सलाह से थून पर आक्रमण किया। मोहकसिंह भाग निकला और सन् 1721 ई0 में थून पर सवाई जयसिंह का अधिकार हो गया।

नवम्बर, 1721 ई0 में बदनसिंह के सहयोग से सवाई जयसिंह थून की गढ़ी पर अधिकार कर पाया था। अतः वह उसका रक्षक बन गया। उसके शिष्टाचार में बड़ी नम्रता झलकती थी और उसके व्यवहार में ऐसा लगता था कि वह हमेशा दूसरों की सहायता करने को तत्पर रहेगा। उसकी यह प्रवृत्ति जाटों के साधारण चरित्र से बिल्कुल भिन्न थी। इसीलिए वह सवाई जयसिंह का कृपा पात्र बन सका। सवाई जयसिंह से बदनसिंह को जाटों पर सर्वोच्चता प्राप्त हो गई और अन्यत्र उसका अधिक सम्मान होने लगा। परन्तु सामन्त नरेश के ये समस्त प्रतीक प्राप्त कर लेने के बाद भी उसने स्वयं को राजा घोषित नहीं किया। ''वह अपने जीवन काल में अपने को ठाकुर नाम से ही सम्बोधित करता रहा और स्वयं को आमेर नरेश का जागीरदार ही घोषित किये रखा।[32]

सवाई जयसिंह की कृपा से बदनसिंह की प्रतिष्ठा अपने पूर्वजों से भी अधिक बढ़ गई थी और इसी प्रतिष्ठा के कारण वह राजसत्ता का उपभोग करने लगा था। सर्वप्रथम तो उसने प्रमुख सम्पन्न जाटों की सम्पत्ति और भूमि पर अधिकार कर लिया व सबको साधारण जाट बना दिया। शक्ति व भूमि अधिकार ने बदनसिंह को जमींदार से छोटा सा राजा बना दिया। उसने अपनी सैनिक शक्ति में भी वृद्धि की। जब सैय्यद बन्धुओं ने दिल्ली की सत्ता हड़प ली जिसके कारण शासन व्यवस्था में गड़बड़ी उत्पन्न हो गई, तब जाट लोग पहले की अपेक्षा अधिक लूटमार और उत्पात करने लगे। क्योंकि बदनसिंह ने

अब सैनिक शक्ति बढ़ा ली थी, जिससे उसकी शक्ति में वृद्धि हो गई। उसकी सेना का एक भाग दिल्ली के शाही मार्ग और आगरा के आस–पास के हिस्सों को लूटने में लगा हुआ था और पड़ोस में शेष भरतपुर राज्य को बढ़ाने में व्यस्त हो गया।[33]

इस प्रकार दिल्ली साम्राज्य की आन्तरिक कमजोरी का लाभ उठाकर जाटों ने अपनी किले बंदी भी शुरू की। वे गोले बारूद एकत्र करने लगे, जिससे लम्बे काल तक आत्मरक्षा की जा सके। थून, सनसिनी, सोगर और उनके अन्य पुराने गढ़ जो शाही सेना ने नष्ट कर दिये थे, अब उनके स्थान पर बदनसिंह ने डीग, भरतपुर, कुम्हेर और वैर के दुर्गो का निर्माण करवाया। इस सैनिक तैयारी की सम्राट के दरबार में कई बार शिकायतें भी हुई, लेकिन बदनसिंह ने कमरूद्दीन को रिश्वत देकर उसे शान्त कर दिया। जब अगस्त 1722 ई0 में सवाई जयसिंह को आगरा की सूबेदारी मिल गई तो जाटों को खूब मनमानी करने का अवसर मिल गया।[34]

सवाई जयसिंह ने आगरा, दिल्ली और आमेर के शाही मार्गो की देखभाल और उन पर राहदारी वसूल करने का काम भी बदनसिंह को सौप दिया। सवाई जयसिंह का नायब और आगरा प्रान्त का वास्तविक सूबेदार बदनसिंह का मित्र था। वह जाटों के साहसी कामों के लिए उपयुक्त पुरूष था। अतः ये लोग प्रान्त में घूमते और लूटमार किया करते थे। बदनसिंह ने गिरते हुए मुगल साम्राज्य की स्थिति का लाभ उठाकर अपने पड़ोसी कई क्षेत्रों पर अधिकार कर लिया तथा नये दुर्गो का निर्माण करवाया और पर्याप्त युद्ध सामग्री संग्रहीत कर शक्तिशाली बन गया। परन्तु इतनी सम्पत्ति और सैनिक

शक्ति अपने पास होते हुए भी जब भी सम्राट उसे अपने दरबार में बुलाता था तब वह यह कहकर क्षमा माँग लिया करता था कि मैं साधारण किसान हूँ। उसने केवल जयपुर नरेश के प्रति अपनी वफादारी प्रकट की और अपने को उसका ही सामन्त घोषित कर रखा था। प्रतिवर्ष दशहरे के अवसर पर वह उसके दरबार में उपस्थित हुआ करता था।[35]

सन् 1730 ई0 में सवाई जयसिंह मराठों के निरंतर बढ़ते खतरों से अत्यन्त क्षुब्ध था। इस विषम स्थिति को भांप कर मेवात के मेवों ने सवाई जयसिंह के विरूद्ध विद्रोह कर दिया। सवाई जयसिंह अपने अधीनस्थ क्षेत्र मेवात में इस स्थिति को देखकर चिन्तित हुआ। इस चिन्ता को बदनसिंह ने जो सवाई जयसिंह से कुछ और अधिक लाभ पाना चाहता था, मेवों के साथ मिलकर लूटपाट को और भी बढ़ा दिया। जाट सरदार बदनसिंह को सन्तुष्ट रखने के लिए जिससे मेवों को कुचला जा सके सवाई जयसिंह ने सिनसिनी, थून और नगर बदनसिंह को दे दिया। इस क्षेत्र से 18 लाख की वार्षिक आय थी। जयपुर के राजा सवाई जयसिंह की मृत्यु के बाद उसके दो पुत्रों ईश्वरीसिंह और माधोसिंह में उत्तराधिकार युद्ध आरम्भ हो गया। सूरजमल ने ईश्वरीसिंह का साथ दिया। सूरजमल ने ही वीरतापूर्वक मराठों को पीछे धकेल दिया। इस युद्ध में माधो सिंह के विरूद्ध ईश्वरीसिंह की विजय हुई। इसी के प्रतिदान में जब ईश्वरीसिंह राजा हो गया तो जयपुर नरेश ने मुगल सम्राट को संस्तुति की कि जाट मुखिया को राजा की उपाधि से सम्मानित किया जाए। इस संस्तुति से जाटों की प्रतिष्ठा में वृद्धि हुई। वस्तुतः यह संस्तुति भरतपुर के इतिहास में महत्वपूर्ण घटना थी क्योंकि इससे उसे अपने विस्तार के लिए

प्रोत्साहन मिला।[36] मुगल सरकार द्वारा राजा की उपाधि की पुष्टि 1750 ई0 में हो गई।[37] बदनसिंह के रणनीति कौशल से ही उसने जयपुर के उत्तराधिकार युद्ध में उसने सही दिशा ली और सही पक्ष को समर्थन देकर अपनी स्थिति राजपूतों, मुगलों तथा मराठों में दृढ़ कर ली।

इस समय बदनसिंह के पास जन धन और साधन सभी कुछ था। अब उसने भरतपुर राज्य के निर्माण की ओर पग उठाया। पूरी तरह से निरक्षर होने पर भी उसमें आश्चर्यजनक सौंदर्य बोध था। भरतपुर के सुन्दर उद्यानों, प्रासादों की भव्य रूपरेखा अकेले उसी ने रची थी। भरतपुर राज्य में सुव्यवस्था और जीवन व सम्पत्ति की सुरक्षा थी। अपने विशाल भवन निर्माण कार्यक्रम की देखरेख के लिए जीवनराम वनचारी को अपना निर्माण मंत्री नियुक्त किया।[38] डीग के किले बगीचों का निर्माण कार्य 1725 ई0 में आरम्भ हुआ। सुजान विलास में उल्लेख मिलता है कि, ''बांशीपहाड़पुर से संगमरमर और बरैठा से लाल पत्थर डीग, भरतपुर, कुम्हेर और वैर तक पहुँचाने के लिए 1000 बैलगाड़ियों, 200 घोड़ागाड़ियों, 1500 ऊँटगाड़ियों और 500 खच्चरों को लगाया गया था। डीग से 15 मील पूर्व की ओर शहर में बदनसिंह ने एक सुन्दर भवन बनवाया जो बाद में उसका निवास स्थान बन गया। डीग का मुख्य महल गोपाल भवन 1745 ई0 तक पूरा बन चुका था।[39] गोपाल भवन के अतरंग कक्ष उत्तरी पूर्वी तथा पश्चिमी भागों में हैं। उत्तरी पूर्व भाग एक बड़े नहाने के तालाब के सामने पड़ता और बहुत से छज्जों और ठेठ बंगाली छत वाले विशाल खुले मंडपों के कारण बहुत आकर्षक एवं अद्भुत बन गया है। यदि

यह वेनिश की विशाल नहर के पास ले जाकर खड़ा किया जा सकता, तो इसे वेनिश का आनन्द दायक महल माना जाता।[40]

भरतपुर किले को बनाने का काम 1732 ई0 में आरम्भ हुआ। राज ज्योतिषियों ने सही दिन एक मुहुर्त चुना। सैकड़ों ब्राह्मणों को भोजन कराया गया। गोवर्धन में श्री गिरिराज महाराज से आशीर्वाद लिया गया। मुख्य किलेबन्दियाँ आठ वर्षों में पूरी हो गईं। उनमें दो खाईंयाँ भी सम्मिलित थी। एक तो शहर के बाहर वाली चार दिवारी के पास थी दूसरी कम चौड़ी पर ज्यादा गहरी खाई किले को घेरे हुए थी बाढ़ के पानी को रोकने और अकाल के समय सहायता पहुँचाने के लिए तथा दो बाँध व दो जलाशय भी बनाये गये थे। यह किला जब पूरा बनकर तैयार हो गया तब यह भारत वर्ष का सबसे अजेय किला था। डीग और भरतपुर के मध्य में कुम्हेर व वैर में अपेक्षाकृत छोटे किले बनाये गये।[41] 19वीं शताब्दी के अन्तिम दिनों में इन इमारतों की देखरेख जे0 एच0 देवनिश कराते रहे थे। उन्होंने इनकी कारीगरी की सराहना करते हुए लिखा है–''प्रत्येक इमारत की योजना बिलकुल सही समरूपता के हिसाब से बनी है, और प्रत्येक अंग का ठीक वैसा ही प्रतिरूप अवश्य बनाया गया है। दीवारों में बने आलों की इस खूबसूरती से नक्काशी की गयी है कि उन्हें देखकर ऐसा लगता है कि मानों वे किसी उद्यान की सुन्दर छतरियों का लघु रूप हों। दीवार के आर पार खोला गया छेद गुंबददार छतों से, जिनमें दीवार के धरातल पर उभारदार नक्काशी की गयी है, मिलते–जुलते ढंग से सजाया गया है। उनकी नक्काशी के अद्‌भुत नमूने हैं।'' आगरा और दिल्ली के महलों से उनकी तुलना करते हुए देवनिश कहता है–'' डीग से जड़त का

काम आगरा और दिल्ली से भिन्न प्रकार का है और सम्भवतः अधिक कलात्मक भी।'' उनकी मौलिकता पर उसकी टिप्पणी है—''अब डीग में जो संगमरमर का एकमात्र भवन है, वह बारीकियों की दृष्टि से मुसलमानी कलाकृतियों से स्पष्टतः भिन्न है, इसकी सारी भावना हिन्दू है। डीग के महलों के निर्माताओं को इस बात की आवश्यकता बिल्कुल नहीं थी कि वे मौलिकता के अभाव के कारण अन्य इमारतों की नकल करें या उन्हें और कहीं से लाकर यहाँ खड़ा करें।''[42] यह बात बेवजह प्रचारित की गयी है कि सूरजमल और जवाहर सिंह ने आगरा और दिल्ली से समूची इमारतों को उखड़वा लिया और उन्हें डीग में ला खड़ा किया, यह एक मिथ्या प्रचार के अलावा कुछ भी नहीं था।

भारत के 'गजेटियर' में थोर्नटन ने लिखा है—''अपने चरम उत्कर्ष के दिनों में सूरजमल ने वे निर्झर—प्रासाद बनवाये, जिन्हें 'भवन' कहा जाता है, भारत में सौन्दर्य तथा कारीगरी की दृष्टि से केवल आगरा का ताजमहल ही इनसे बढ़कर है।[43] जेम्स फर्ग्युसन भी इसी निष्कर्ष पर पहुँचा है कि ये महल 'अप्सरा—लोक की कृतियाँ हैं।'[44]

राज्य निर्माण की प्रक्रिया निरन्तर गतिशील ही नही रही बल्कि मराठों व क्षेत्रीय शक्तियों से निरन्तर संघर्ष भी होता रहा। कुम्हेर दुर्ग के घेरे के समय ही बहुत कम समय में जाटों के चार दुर्ग (भरतपुर, कुम्हेर, वैर व डीग) को छोड़कर लगभग सम्पूर्ण जाट प्रदेश पर मराठों का अधिकार हो गया। परन्तु शान्ति वार्ता के बाद सूरजमल की तात्कालिक समस्या जाट राज्य की पुर्नव्यवस्था और खोए हुए भू—भाग पर पुनः अधिकार करने की थी। यद्यपि इस घेरे के दौरान सूरजमल की सैनिक शक्ति को कोई विशेष हानि नही पहुँची

थी, किन्तु मात्र चार दुर्गों को छोड़कर सम्पूर्ण जाट राज्य व्यवहारतः इमादुलमुल्क एवं मराठा सेनाओं के अधिकार में जा चुका था। अपने खोये हुए राज्य की प्राप्ति के लिए जाट पुनः सक्रिय हो गए। उन्होंने दिल्ली के समीपवर्ती क्षेत्रों में लूटपाट शुरू कर दी और नरेला और सोनीपत के कई गाँवों में मराठों के साथ भी उनकी मुठभेड़ें हुई। मराठों ने इस समय अपने विस्तार के लिए सूरजमल से समझौता कर लेना ठीक नीतिसंगत समझा। सूरजमल ने पिछले संघर्ष के अनुभव के आधार पर मराठों की तुलना में इमादुलमुल्क को अपना प्रमुख शत्रु समझा, जो अभी भी जाट प्रदेशों पर अधिकार जमाए हुए था, जबकि मराठे जाट प्रदेश को खाली कर चुके थे। इस कारण सूरजमल ने भी इमादुलमुल्क से अपने प्रदेशों को मुक्त कराने के लिए मराठों के साथ समझौता कर लेना बुद्धिमता पूर्ण समझा। वैण्डल के अनुसार ''इस समझौते के अनुसार जाट राजा इस बात पर सहमत हो गया कि मराठों के युद्धों में वह उनका विरोध नहीं करेगा और उत्तर में जब मराठों की सेना कूच करेगी, तब वह किसी प्रकार का विरोध नही करेगा। उस समय आगरा का सूबे का बड़ा भाग मराठों के हाथ में था। रघुनाथराव ने सूरजमल को यह अनुमति दे दी कि वह इस प्रदेश पर अधिकार कर सकता है।[45] मराठा सूत्रों के अनुसार सूरजमल को इस प्रदेश में बादशाह के खालसा के महल, वजीर की जागीरें तथा अन्य जागीरों पर अधिकार करने की स्वीकृति दे दी गई थी। यह समझौता संभवतः अगस्त (1754 ई0) के अन्त में हुआ, जब मल्हारराव होल्कर का दीवान गंगाधर मथुरा में सूरजमल से मिला था।

मराठों को विश्वास में लेकर अब सूरजमल ने शाही परिवार से अपने प्रदेशों की मुक्ति के लिए खुला संघर्ष छेड़ दिया। सितम्बर के प्रारम्भ में उसने होडल तथा उसके आसपास के क्षेत्रों पर अधिकार कर लिया। 27 सितम्बर को उसने बालू जाट के पुत्र के नेतृत्व में एक जाट सेना पलवल पर अधिकार करने के लिए भेजी, जो वजीर का जागीर–ए–महल था। अगले दिन जाट सेना ने अचानक हमला करके पलवल पर अधिकार कर लिया। जाटों ने वहाँ के काजी को गिरफ्तार कर लिया और कानूनगों संतोषराय को जिसने बालू जाट की हत्या के लिए अकीबत खाँ को उकसाया था, मौत के घाट उतार दिया।

यह समाचार मिलते ही बजीर गाजीउद्दीन (इमादुलमुल्क) उसी समय अपनी सेना के साथ मल्हार राव होल्कर के पास गया और जाटों के विरूद्ध आक्रमण में उसकी सहायता करने की प्रार्थना की। इस पर मल्हारराव होल्कर ने उसे शान्त किया और अगले दिन वह वजीर को रघुनाथराव के पास ले गया। रघुनाथराव ने वजीर को स्पष्ट जवाब दिया,'' हमने सूरजमल के साथ संधि की है। मैं अपने वचन से पीछे नहीं हटूँगा। आप धैर्य रखिए, मैं सूरजमल को आपके जागीर–ए–महल पर अधिकार न करने के लिए लिख देता हूँ।[46]

इस बीच अकीबत खाँ ने बंदख्शी सेना तथा रिसालेदर के नेतृत्व में सैनिक टुकड़ियाँ भेजकर मेवात के गाँवों में राजस्व वसूली तथा लूटमार शुरू कर दी थी। इस पर अक्टूबर के मध्य में सूरजमल ने एक शक्तिशाली जाट सेना को भेजकर शाही सेना को खदेड़ दिया और मेवात के अधिकांश क्षेत्र पर जाटों का पुनः अधिकार स्थापित हो गया।[47]

इस समय वजीर अपनी सेनाओं के बकाया वेतन को लेकर विद्रोह तथा बढ़ते हुए शत्रुओं से परेशान था, अतः उसने सूरजमल से समझौता कर लेना हितकर समझा। बापू हिंगणे चाहता था कि जाट एवं वजीर के मामलात मराठों के मार्फत तय होने चाहिए। परिणाम स्वरूप 22 अक्टूबर, 1754 ई0 को जससिंह पुरा स्थित मराठा शिविर में यह वार्ता शुरू हुई। मल्हारराव होल्कर के दीवान गंगाधर तांत्या और सूरजमल के पुरोहित रूपराम कटारी ने वार्ता प्रारम्भ करते हुए वजीर से कहा कि वल्लभगढ़ सूरजमल को दे दिया जाये, जो पहले उसके पास था। वजीर के इन्कार करने पर यह वार्ता भंग हो गयी।[48]

28 अक्टूबर को सूरजमल ने शक्तिशाली अभियान छेड़कर आगरा के निकटवर्ती सभी परगनों पर अधिकार कर लिया और वहाँ पर एक भी महाल खालसा भूमि में नहीं बची। इमादुलमुल्क ने बहादुर खान बलूच को जाटों द्वारा अधिकृत परगनों पर पुनः अधिकार करने के लिए भेजा, किन्तु वह जाट (अलग–अलग) सेना द्वारा खदेड़ दिया गया।[49] ऐसा लगता है कि कुछ ही समय बाद जाट सेना वल्लभगढ़ पर पुनः अधिकार करने में सफल रही। अलीगढ़ पर भी आक्रमण करके दुर्ग पर अधिकर कर लिया और उसका नाम रामगढ़ कर दिया गया। अलीगढ़ को आधार बनाकर न केवल निकटवर्ती प्रदेश पुनः जाट राज्य में मिला लिए गए, बल्कि अब सूरजमल ने गंगा–यमुना के दोआब में आगे बढ़ना शुरू किया। यहाँ अन्ताजी माणकेश्वर के नेतृत्व में बढ़ती हुई मराठा सेना ने जाटों द्वारा अतिक्रमण के बावजूद संघर्ष से बचने का प्रयास किया।

सूरजमल के इस विजय अभियान को रोकने के लिये मुगल साम्राज्य के वजीर इमादुलमुल्क ने नजीबुद्दौला को एक शक्तिशाली सेना लेकर भेजा, साथ ही वजीर ने सम्राट से भी सूरजमल के विरूद्ध कूच करने का आग्रह किया। सूरजमल युद्ध के लिये पूर्णतः तैयार था जब युद्ध की काली छाया घिरने लगी तभी नागरमल की मध्यस्थता से वजीर व सूरजमल के मध्य शान्ति समझौता हो गया। इस समझौते के अन्तर्गत मराठों को भी चम्बल पार खदेड़ने का निर्णय लिया गया। यद्यपि वजीर इस निर्णय के प्रति ईमानदार नहीं था। फिर भी मराठों को जब इस समझौते की सूचना मिली तो वे अपने विरूद्ध एक बड़े राजनीतिक गठबन्धन की आशंका से भयभीत हुए। पेशवा ने दिल्ली स्थित अपने राजपूत हिंगणे बन्धुओं को लिखा कि वे इस बात की विस्तार से सूचना भेजें कि ''करार के मुताबिक जाट का व्यवहार है अथवा नहीं और वह क्या मनसूबा कर रहा है।'' साथ में उसने यह भी सलाह दी कि जो राजनीतिक स्थिति मराठों के विरूद्ध हो रही है, उसे जाट राजा के साथ बातचीत करके ठीक करें। एक अन्य पत्र में पेशवा ने उसे लिखा कि वे (हिंगणे बन्धु) जाट व नजीबुद्दौला की ऐकता को तोड़ने का प्रयास करें और बादशाह, वजीर, जाट तथा शुजाउद्दौला के मराठा विरोधी समझौते को सम्भव न होने दें।[50]

मराठों व जाटों के आर्थिक व क्षेत्रीय विस्तार के बिन्दु पर विवाद ने जाटों को संकट में डाल दिया। मराठों ने जाटों के कुम्हेर दुर्ग की घेराबन्दी की। परन्तु सूरजमल के रणनीति व कूटनीतिक कुशलता ने इस घेरे को असफल कर दिया। कुम्हेर की विपत्ति के एक वर्ष के भीतर ही सूरजमल अपने दोनों प्रमुख शत्रुओं (इमादुलमुल्क व मराठे) से पृथक–पृथक समझौते सम्पन्न

करके अपनी राजनीतिक स्थिति को सुरक्षित, लाभप्रद एवं सुदृढ़ बनाने में सफल रहा। वह अपनी जागीरों की पुनर्प्राप्ति और उन पर शाही मान्यता प्राप्त करने में सफल हुआ और अब अधिक आत्मविश्वास के साथ अपने राज्य विस्तार के प्रयासों में लग गया।

भरतपुर के आगे आगरा व ग्वालियर के बीच में गोहद का छोटा सा राज्य[51] था। यहाँ के जाटों ने भरतपुर के जाट राजा के समर्थन से अपनी स्वतंत्र सत्ता स्थापित कर ली थी। मराठों के उत्तर भारत के प्रवेश द्वार चम्बल पर स्थित होने के कारण इस समय यहाँ के राणा भीमसिंह को अपने प्रदेश की रक्षा के लिए उनसे लगातार संघर्ष करना पड़ा। 1754 ई 0 में अन्ताजी माणकेश्वर के नेतृत्व में मराठा सेना ने मार्ग देने के बहाने उसके मुल्क को उजाड़ दिया और बहुत बड़े भूभाग पर अधिकार कर लिया। मराठा आक्रमण से अपनी रक्षा के लिए राणा भीमसिंह ने अपने स्वजातीय एवं पड़ोसी जाट राजा सूरजमल से मित्रता की तथा गोहद में अपनी सत्ता पुनः कायम की।

1755 ई0 के प्रारम्भ में जब सूरजमल ने आगरा व दोआब में अधिकृत प्रदेशों की वापसी का अभियान तेज कर दिया था, उसी समय राणा भीमसिंह ने बढ़ते हुए ग्वालियर के किले पर भी अधिकार कर लिया था। इस समय मुख्य मराठा सेना दिल्ली के निकट तथा दोआब की ओर थी, इस कारण विट्ठल सदाशिव के नेतृत्व एक मराठा टुकड़ी इधर भेजी गई, जिसने गोहद के जाटों पर आक्रमण करके उन्हें पीछे हटने पर मजबूर किया। इस पर राणा ने अपने सरदार फतहसिंह को सूरजमल के पास सहायता के लिए भेजा।

जुलाई में सूरजमल ने 500 सवार और 2000 पैदल उसके साथ रवाना कर दिए।[52]

भरतपुर की सेना के पहुँचते ही अगस्त में एक बड़ा युद्ध हुआ, जिसमें मराठा सेना बुरी तरह से पराजित हुई। दिल्ली से मराठा कुमुक न आने के कारण विट्ठल सदाशिव को भारी रूपया खर्च करके अनेक जमींदारों को मिलाकर स्थानीय सेना तैयार करनी पड़ी। सेना की पुर्नव्यवस्था के बाद जाटों से फिर भयंकर संघर्ष छिड़ गया। सितम्बर में प्रमुख जाट सरदार फतहसिंह के मारे जाने पर जाट सेना मैदानों से हटकर जंगलों की तरफ चली गई। किन्तु जाटों के छापामार संघर्ष के कारण विट्ठल सदाशिव की सेना की स्थिति विशेष रूप से आर्थिक दृष्टि से विषम होती गई। इसी समय दिल्ली से रघुनाथराव ने मराठों को सन्देश भेजा कि वह कुमुक भेज रहा है, अतः वे अपना स्थान न छोड़े।[53]

दिल्ली से अतिरिक्त सेना के पहुँचने पर गोपाल गणेश के नेतृत्व में एक मराठा टुकड़ी जाटों को पराजित करके ग्वालियर के दुर्ग पर अधिकार करने में सफल रही। किन्तु गोहद का बड़ा भू–भाग अभी भी जाटों के अधिकार में था, और उनके निरन्तर संघर्ष के कारण मराठा सेना इस क्षेत्र से हटने की स्थिति में नहीं थी। अन्ततः लम्बे अनिश्चित संघर्ष से परेशान राणा भीमसिंह ने रूपराम कटारा के माध्यम से रघुनाथराव के समझौते के सम्बन्ध में संपर्क किया। विट्ठल सदाशिवराव को जब पता लगा तो उसने रघुनाथराव को सतर्क करते हुए लिखा कि वह रूपराम कटारा की बातों पर विश्वास न करें। ऐसा प्रतीत होता है कि अन्त में सूरजमल, जिसका रघुनाथराव के साथ समझौता था,

अपनी सदभावना का उपयोग करके नवम्बर, 1755 ई0 के अन्त में गोहद के झगड़े को शान्ति पूर्वक निपटाने में सफल हुआ।

कुम्हेर के घेरे के दौरान मराठा सेना ने घसेरा जाटों से छीन लिया और उसे उसके पैतृक स्वामी बहादुरसिंह बड़गूजर के पुत्र फतहसिंह को सौंप दिया। सूरजमल के द्वारा घसेरा पर आक्रमण और अपने पिता की मृत्यु के समय दिल्ली में होने के कारण फतहसिंह बच गया था। बाद में वह जाटों के विरूद्ध इमादुलमुल्क का साथी बन गया और कुम्हेर के घेरे में उसने मराठों के पक्ष में युद्ध किया था। 6 नवम्बर, 1755 ई0 को सूरजमल के पुत्र जवाहरसिंह ने यह प्रदर्शित करते हुए कि वह जयपुर के राजा माधोसिंह से मिलने जा रहा है, मेवात से निकलकर अचानक घसेरा पर आक्रमण करके उस पर अधिकार कर लिया। फतहसिंह अपने प्राण बचाकर कामगर खान बलूच की जमींदीरी फर्रूखनगर भाग गया। जाट सेना ने दिल्ली से 12 कोस दूर सराय अलीवर्दीखान तक धावा बोला।[54]

1755 ई0 में राजपूताना मराठा अतिक्रमण से पीड़ित था। उनसे छुटकारा पाने के लिए मारवाड़ के राठौड़ राजा विजयसिंह ने, जो नागौर में मराठा सेनाओं से बुरी तरह से घिरा हुआ था, ठोस राजनैतिक कार्यवाही शुरू कर दी थी। उसने मुगल सम्राट नजीबुद्दौला, सूरजमल और माधोसिंह को उत्तर भारत से मराठों को निकाल बाहर करने के लिए संयुक्त मोर्चा बनाने का आह्वान किया। सूरजमल ने, जो स्वयं साल भर पहले ऐसी ही स्थिति से गुजर चुका था और मराठों को अपना शत्रु एवं दोआब में अपना मुख्य प्रतिद्वन्दी मानता था, इस प्रस्ताव का समुचित स्वागत तो किया, किन्तु वह जयप्पा सिन्धिया (जिसकी

सहायता से उनके कुम्हेर के घेरे के संकट से मुक्ति पाई थी) के विरूद्ध युद्ध में प्रत्यक्ष भाग लेने से बचना चाहता था। ऐसी स्थिति में सूरजमल ने नई मराठा कुमुक को जयप्पा सिन्धिया की सहायतार्थ मारवाड़ की ओर जाने से रोकने का निश्चय किया।[55]

जयप्पा सिन्धिया की हत्या से हतप्रभ दत्ताजी व जनकोजी ने तुरन्त विभिन्न मराठा सरदारों को सहायतार्थ बुलाया। साहसी मराठा सरदार अन्ताजी माणकेश्वर, जो इस समय बुन्देलखण्ड में था, शीघ्र रवाना हो गया। उसने पूर्व में हुए समझौतों के अनुसार माधोसिंह दिसम्बर 1753 ई0 और सूरजमल अगस्त, 1754 ई0 को भी ससैन्य शामिल होने के लिये लिखा। किन्तु सूरजमल और माधोसिंह, सभी के समान रूप से शत्रु मराठों को चम्बल के उस पार खदेड़ने और विजयसिंह की सहायता करने पर सहमत हो चुके थे। दोनों ने मन्त्रणा करके षड़यन्त्र द्वारा इस मराठा सेना को नागौर की ओर जाने से रोकने का निश्चय किया।[56]

माधोसिंह ने अपने बख्शी के नेतृत्व में एक सेना और सूरजमल ने अपने पुत्र जवाहरसिंह के नेतृत्व में 20,000 सेना, नवम्बर, 1755 ई0 के अन्त में अन्ताजी माणकेश्वर की सेना में शामिल होने के लिए चम्बल पर भेज दी, किन्तु गुप्त रूप से दोनों ने यह समझौता कर रखा था कि किसी स्थान पर अवसर पाकर ये संयुक्त सेनाएँ मराठों पर टूट पड़ेगी और उन्हें राजपूताना में विजयसिंह के विरूद्ध नागौर जाने से रोक देगी। ऐसा प्रतीत होता है कि गोहद के जाट राज्य में पहुँचते ही अन्ताजी माणकेश्वर को इस षड़यन्त्र का पता लग गया। इस कारण उसने मारवाड़ जाने का विचार बदल दिया, क्योंकि

वहाँ जाने के लिए मराठों को जाट व कछवाहों के प्रदेश में से होकर गुजरना पड़ता, जो कि संभावित विपत्ति का कारण बन सकता था। क्रुद्ध होकर इस मराठा सेना ने गोहद के जाटों से संघर्ष मोल ले लिया, जिनसे हाल ही में समझौता हुआ था और जिनकी 2000 सेना सहायतार्थ उनके साथ सम्मिलित थी। जनवरी, 1756 ई0 में मराठे गोहद के कुछ भू–भाग को जीतने में सफल हुए और अन्तर्वेद की ओर चले गए।[57]

गोहद के मामले और सूरजमल द्वारा अन्ताजी माणकेश्वर को मारवाड़ पहुँचने से रोकने के कारण जाट–मराठा समझौता (अगस्त 1754 ई0) व्यवहारतः जनवरी, 1756 ई0 में समाप्त हो गया। किन्तु इस वर्ष सूरजमल को अपने दोनों शत्रुओं इमादुलमुल्क व मराठों से कोई विशेष परेशानी नहीं हुई, क्योंकि ये दोनों अधिकांश समय पंजाब में व्यस्त रहे। सूरजमल ने इस वर्ष का अधिकांश समय आन्तरिक व्यवस्था को सुदृढ़ करने और अपने ज्येष्ठ पुत्र जवाहरसिंह के विद्रोह से निपटने में व्यतीत किया।

जब वजीर अहमद खान बंगश के द्वारा शुजाउद्दौला को इलाहाबाद से हटाने का प्रयास कर रहा था, तभी यह प्रबल अफवाह फैली कि सूरजमल और शुजाउद्दौला ने मिलकर पहले अहमद खान को और बाद में वजीर को हटाने का निश्चय किया है। इससे वजीर आशंकित हुआ और उसकी इच्छानुसार राजा नागरमल ने सूरजमल को बुलाने के लिए अपने दूत सुजान ब्राह्मण को भेजा तथा नजीबुद्दौला ने अपने प्रभाव का उपयोग करके अहमदखान को शुजाउद्दौला के पक्ष में हाल ही में मिली इलाहबाद की सूबेदारी छोड़ने के लिए सहमत करा लिया।[58]

किन्तु सूरजमल के लिए शुजाउद्दौला की वजारत का समर्थन गौण प्रश्न था, जिसका वह अपने प्रमुख शत्रु इमादुलमुल्क के विरूद्ध राजनीतिक हथियार के रूप में काम लेना चाहता था। उसके लिए मुख्य प्रश्न यह था कि सैनिक दृष्टि से अधिक शक्तिशाली तथा आगरा व दोआब में अपने राज्य विस्तार में मुख्य प्रतिद्वन्दी मराठों का कैसे मुकाबला किया जाय। कुम्हेर के घेरे में अपने विरूद्ध इमादुलमुल्क व मराठों के शत्रुता पूर्ण गठबन्धन को सूरजमल भूला नहीं था और जब मराठों को पृथक कर इमादुलमुल्क के घुटने टिका दिए (26 जुलाई, 1755 ई0 की सन्धि) अब उसने मराठों से निपटने के लिए राजपूताना के राजाओं के साथ मिलकर उन्हें चम्बल के उस पार खदेड़ने की योजना पर सम्राट एवं वजीर को भी सहमत कराने का प्रयास किया।

11 नवम्बर, 1756 ई0 को सूरजमल वजीर से वार्ता करने के लिए दिल्ली से 14 मील दक्षिण में तिलपत आकर रूका, जहाँ नागरमल उससे आकर मिला।[59] 13 नवम्बर को इस वार्तालाप में वजीर का दूत नजीबुद्दौला भी शामिल हो गया। वार्ता के दौरान सूरजमल ने नजीबुद्दौला को कहा, ''हम जमींदार हमेशा ही सम्राटों की सहायता से खुशहाली में रहने के आदी रहे हैं। किन्तु अब मराठा सेनाएँ इन क्षेत्रों में आकर सभी की सम्पत्ति एवं सम्मान को लूट रही हैं तथा छोटे व बड़े सभी जमींदारों को परेशान कर रही हैं। जोधपुर, जयपुर व अन्य स्थानों के कई राजा इस बात पर सहमत हो चुके हैं कि मराठों को नर्मदा के उत्तर में प्रवेश करने से रोका जाय और जिन क्षेत्रों पर उन्होंने कब्जा कर लिया है, वहाँ से उन्हें निकाला जाय, ताकि वहाँ पर पुनः शाही अधिकार स्थापित हो।'' सूरजमल ने सुझाव दिया, 'मैं भी अपनी पुरानी

जमींदारी को छोड़कर शेष सभी परगने शाही सत्ता को सौंप दूँगा, जिसके बदले वजीर मेरे साथ आगरा चलें और मराठों से मालवा एवं गुजरात छीनने में मेरी सहायता करें।[59(i)]

सूरजमल उत्तर में बढ़ते हुए मराठा हस्तक्षेप का प्रमुख कारण वजीर इमादुलमुल्क द्वारा उनके समर्थन को मानता था, इस कारण वह इमादुलमुल्क की मराठों पर निर्भरता को समाप्त करना चाहता था। किन्तु ऐसा प्रस्ताव इमादुलमुल्क कभी स्वीकार नहीं कर सकता था, जो हमेशा मराठों की छाती से बच्चे की तरह चिपका रहता था और उसे आशंका थी कि वैसी स्थिति में उसे नजीबुद्दौला तथा सूरजमल पर अधिक निर्भर रहना पड़ेगा जो पद और प्रतिष्ठा में उससे काफी नीचे है। इमादुलमुल्क अपने विरोधियों के विरूद्ध अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए तथा अहमदशाह अब्दाली के आक्रमण के खतरे का सामना करने के लिए मराठों की सैनिक सहायता अनिवार्य समझता था। इस कारण उसने सूरजमल के प्रस्ताव को ठुकरा दिया।

कुम्हेर घेर के युद्ध में खाण्डेराव होल्कर मारा गया। जिससे मल्हारराव होल्कर को भारी सदमा पहुँचा। यह घटना 17 मई, 1754 ई0 में हुई। मल्हारराव होल्कर पुत्र शोक से क्रोधित हो उठा। उसने इमादुलमुल्क को बुलावा भेजा और उसके आने पर भयानक युद्ध की भूमिका तैयार की गई। इस संकट के समय में सूरजमल की पत्नी रानी किशोरी उर्फ हंसिया ने अद्भुत रणनीतिक कुशलता का परिचय दिया। वह बड़ी कुटनीतिक थी और उसे मल्हारराव होल्कर तथा जयप्पा सिन्धिया की पारस्परिक शत्रुता का भान था। उसने जयप्पा सिन्धिया को सौगात और भेंट देकर अपने पक्ष में कर

लिया। जयप्पा सिन्धिया ने अपने प्रभाव से रघुनाथराव को आक्रमण न करने का भरोसा ले लिया। जाटों ने वीरता का परिचय दिया। जयप्पा सिन्धिया ने पारस्परिक समझौते पर बल दिया और व्यर्थ युद्ध लड़ने की आलोचना की। अतः सन्धि हो गई और जाट राजा को अब सिर्फ तीन किश्तों में 30 लाख रूपये भुगतान करना था। 18 मई, 1754 ई0 को मराठों ने कुम्हेर छोड़ दिया। सूरजमल ने एक प्रकार से इमादुलमुल्क मराठे तथा जयपुर की सम्मिलित शक्तियों की योजनाओं पर पानी फेर दिया। इससे जाटों की प्रसिद्धि बढ़ी। दूसरे मराठों को यह भी संशय हुआ कि राजपूत जाटों से मिले हुए थे। मराठों और जाटों की मैत्री के फलस्वरूप सूरजमल पलवल, बल्लभगढ़ तथा अलीगढ़ पर भी कब्जा करने में सफल हुआ। 23 मार्च, 1756 ई0 में उसे अलवर का शाही किला भी उसके कब्जे में आया। 7 जून, 1756 ई0 में बदनसिंह की डीग में मृत्यु हो गई।

ब्रजराज बदनसिंह की मृत्यु (7 जून, 1756 ई0) के पश्चात् उसका ज्येष्ठ पुत्र सूरजमल जाट राज्य का शासक बना। इस परिवर्तन से जाट राजा की नीतियों के निर्धारण में कोई प्रभाव नहीं पड़ा क्योंकि राज्य के सम्पूर्ण दायित्व ब्रजराज बदनसिंह ने दुःसाध्य नेत्र रोग से पीड़ित होने के बाद सूरजमल को पहले से ही सौंप रखे थे।[60] इस कारण नवम्बर, 1945 ई0 से सूरजमल शासन संचालन के पूरे अधिकारों के साथ जाट राज्य का वास्तविक शासक बना हुआ था।[61]

इस समय बदलते राजनीतिक परिस्थितियों में मुगलानी बेगम व नजीबुद्दौला दोनों ने अब्दाली से सहायता मांगी थी इसे बाद में अहमदशाह

अब्दाली ने पंजाब पर अपना आधिपत्य कर दिल्ली की ओर बढ़ने लगा। उसका प्रमुख लक्ष्य मराठों को उत्तरी भारत से भगाना था। दिल्ली में अपना प्रभुत्व स्थापित कर अहमदशाह ने उत्तरी भारत की शक्तियों से नजराना पेश करने को कहा। अब्दाली ने सूरजमल को भी धमकी भरे पत्र भेजे। अब्दाली ने जाट प्रदेशों को भी अपने आक्रमण क्षेत्र का हिस्सा बनाया और काफी अशान्ति व लूटपाट भी की। अहमदशाह अब्दाली के भारत आक्रमण से उत्पन्न अव्यवस्था के बाद अपने खोये हुए प्रदेशों के पुनः प्राप्ति के प्रयास तेज होने लगे।

22 मई, 1761 ई0 को अहमदशाह अब्दाली वापिस लौट गया। सूरजमल ने अहमदशाह अब्दाली से मुक्त होकर अपनी महत्वकांक्षाओं की पूर्ति के लिए तेजी से कदम बढ़ाये। उसने शीघ्र ही दोआब में कोईल, जलेसर, बुलन्दशहर के कई परगनों पर राज्य स्थापित कर लिया। दोआब विजय में उसने शाही व मराठा जागीरों में कोई भेद नहीं किया। सूरजमल के इस आक्रामक रूख को देखकर मराठा क्षेत्रों में भारी चिन्ता हुई, जो इस समय दोआब में अपने खोये हुए प्रदेशों की पुर्नप्राप्ति में उससे सहयोग की अपेक्षा कर रहे थे।[62]

राजा सूरजमल मराठों को उत्तर भारत से बाहर निकालना चाहता था। किन्तु इस समय मराठा सेनाऐं उत्तर भारत के सर्वाधिक शक्तिशाली जाट राजा सूरजमल के विरूद्ध कोई भी कदम उठाने की स्थिति में नहीं थे। इस समय बिना किसी परेशानी के सूरजमल की सेना आगरा, मेवात, रेवाड़ी को विजित करते हुए दिल्ली से 20 मील दूर सराय बसन्त तक पहुँच गयी।[63] नजीबुद्दौला जो सूरजमल की शक्ति एवं बुद्धि का लोहा मानता था और इस तथ्य से भी

अच्छी तरह अवगत था कि जाटों के विरूद्ध वर्तमान में हिन्दुस्तान की कोई भी शक्ति उसका साथ देने को तैयार नहीं होगी, इसलिए वह अहमदशाह अब्दाली के आने तक किसी भी गम्भीर युद्ध का खतरा नहीं उठाना चाहता था। अतः नजीबुद्दौला समझौते के लिए सूरजमल की ओर झुका फलतः दोनों के मध्य मैत्री समझौता हो गया। अब राजा सूरजमल ने मराठा क्षेत्रों पर अपना ध्यान पुनः केन्द्रित किया इस समय प्रधान मराठा सेनाएँ उत्तर भारत में नहीं थी। नवम्बर, 1761 ई0 में माधोसिंह को पराजित करने के पश्चात्, होल्कर भी दक्षिण को लौट गया था। जयपुर राजा माधोसिंह सूरजमल को उत्तर से मराठा अधिकार को समाप्त करने के लिए प्रेरित कर रहा था। इसके अतिरिक्त नजीबुद्दौला से सन्धि और अहमदशाह अब्दाली के खतरे के कारण दिल्ली की और जाट राज्य का विस्तार रूक गया। ऐसी परिस्थितियों में सूरजमल ने 1762 ई0 के वर्ष में मराठा क्षेत्रों पर शान्तिपूर्वक शनैः–शनैः अपने अधिकार की स्थापना का कार्य किया। परिणाम स्वरूप वह दोआब से चम्बल तक मराठा अधिकार को समाप्त करने में सफल रहा।[64]

महाराजा सूरजमल 25 दिसम्बर, 1763 ई0 को नजीबुद्दौला के सैनिकों द्वारा अचानक मारा गया। राज्य का प्रधानमंत्री, सेनापति और भरतपुर दुर्ग का किलेदार बलराम महाराजा सूरजमल के छोटे पुत्र नाहरसिंह को साथ लेकर, उसी रात सेना के साथ कूच कर द्रूतगति से सूरजमल की मृत्यु के दुःखद समाचार के साथ 27 दिसम्बर, 1763 ई0 को डीग पहुँच गया।[65] महाराजा सूरजमल के सिंहासन का वास्तविक उत्तराधिकारी उसका ज्येष्ठ प्रतापी पुत्र जवाहर सिंह था। लेकिन मृत महाराजा सूरजमल की इच्छा, प्रधानमंत्री व

सेनापति बलराम का जवाहरसिंह के प्रति वैमनस्य भाव तथा अधिकांश जाट सरदारों की भावना के समर्थन के कारण नाहरसिंह का पक्ष प्रबल हो गया।[66] जाट जाति के प्रतिष्ठित व्यक्ति इस महत्वपूर्ण उत्तराधिकार प्रश्न का निर्णय ही करने वाले थे कि जवाहरसिंह का संदेशवाहक वहाँ आ पहुँचा।[67] उसने जवाहरसिंह का भावनात्मक एवं धमकी भरा संदेश उपस्थित जाट सरदारों के मध्य कहा कि अपने स्वामी का साथ छोड़कर चले आने वालों ने बहुत ही अनुचित कार्य किया। अब उसका बदला लेने के स्थान पर वे यह सोच रहें है कि उसका उत्तराधिकारी कौन हो। साथ ही जवाहरसिंह ने यह भी संदेश भेजा कि वह इस समय अपने जन्मसिद्ध का दावा नहीं करेगा, किन्तु सबसे पहले वह अकेला ही अपनी अल्प सैनिक शक्ति के साथ अपने पिता के घातक पर आक्रमण करके मृत्यु का बदला लेगा। इसके उपरान्त ही विचार करेगा कि पिता की गद्दी पर बैठने का यथार्थ में कौन उत्तराधिकारी है।[68]

जवाहरसिंह के इस धमकी भरे संदेश ने नाहरसिंह व उसके समर्थकों की योजना को समाप्त कर दिया। स्वभाव से भीरू और साहस हीन नाहरसिंह अपने कुटुम्बियों तथा कुछ समर्थक जाट सरदारों के साथ कुम्हेर भाग गया, वहाँ से धौलपुर चला गया। इसी दौरान जवाहरसिंह द्रूतगति के एक ऊंट पर सवार होकर शीघ्र ही डीग आ पहुँचा। बुद्धिमान तथा नीति निपुण प्रधानमंत्री बलराम ने भी समझ लिया कि अब जवाहरसिंह के समर्थन करने के अतिरिक्त कोई विकल्प शेष नहीं रह गया है अतः उसने जवाहरसिंह के उत्तराधिकार की घोषणा करवा दी। इस प्रकार साहस तथा चातुर्य से जवाहरसिंह ने अपना खोया हुआ उत्तराधिकार प्राप्त कर लिया।[69]

जवाहरसिंह योग्य पिता का योग्य पुत्र था। उसने अपने साहस व चातुर्य से उत्तराधिकार तो प्राप्त कर लिया था। किन्तु परिस्थितियाँ अब भी उसके प्रतिकूल ही थी। नाहरसिंह जवाहरसिंह को राजगद्दी से उतारने के लिए धौलपुर में मराठों से साँठ–गाँठ कर रहा था। नाहरसिंह के समर्थक जाट सरदार डीग और भरतपुर छोड़ कर सुदूर क्षेत्रों में अपनी–अपनी जागीरों को चले गयें। वैर के राजा बहादुरसिंह ने जवाहरसिंह को महाराजा मानने से इन्कार कर दिया और वह स्वयं स्वतंत्र शासक बनने का प्रयास करने लगा। बलराम ने जाट राज्य का गुप्त खजाना बताने से इन्कार कर दिया।[70] इन विपरीत परिस्थितियों से विचलित न होकर जवाहरसिंह ने राजमाता किशोरी से आर्थिक सहायता प्राप्त कर अपनी पूर्व घोषित प्रतिज्ञा को पूर्ण करने के लिए ठोस प्रयास करने प्रारम्भ किये। उसने जाट सरदारों से कहा कि यदि वे महाराजा सूरजमल के घातक रूहेला सरदार नजीबुद्दौला के विरूद्ध युद्ध में उसकी सहायता नहीं करेगें तो धन के बल पर विदेशी सैनिकों की सहायता प्राप्त करके वह नजीबुद्दौला पर आक्रमण करेगा। जवाहरसिंह के इस संकल्प का जाट सरदारों पर प्रभाव पड़ा और उन्हें उसका साथ देने के लिए सहमत होना पड़ा।[71] जवाहरसिंह भी अपने पिता की भाँति मराठों को उत्तर भारत से बाहर निकालने की नीति का समर्थक था। किन्तु रूहेला सरदार नजीबुद्दौला से अपने पिता की मृत्यु का प्रतिशोध लेने के लिए उसे अपने मराठा विरोध की इच्छा का त्याग ही नहीं करना पड़ा बल्कि मराठों से सहायता माँगने के लिए विवश होना पड़ा।[72]

जून, 1767 ई0 में जब पंजाब से ही अहमदशाह अब्दाली वापस अपने देश को लौट गया, तब जवाहरसिंह ने अपनी मराठा विरोधी युद्ध योजना को क्रियान्वित करना पुनः आरम्भ कर दिया। 29 जून, 1767 ई0 तक जवाहरसिंह ने बटेसुर, मैडि में अपना थाना बैठा दिया और भदावर क्षेत्र पर भी उसका अधिकार हो गया। तद्नन्तर जून, 1767 ई0 के ही अन्तिम दिनों में 50 हजार सेना व तोपखाने के साथ जवाहरसिंह ने सिंध नदी को पार किया और मराठा अधिकार क्षेत्रों में लूटमार तथा उपद्रव करना प्रारम्भ किया। उसने लहार पर अपना थाना बैठा करके 10 हजार सेना रामपुरा पर आक्रमण करने के लिये भेजी। जवाहरसिंह की इस सेना ने रामपुरा के समस्त क्षेत्र में लूटमार की और वहाँ की मराठा सेना को पराजित किया। विजयानन्द की जाट सेना ने रामपुरा से आगे बढ़ कर आमान (आमायान) गढ़ी को घेर लिया। आमान गढ़ी का महन्त इस जाट आक्रमण से भयभीत हो गया। वह युक्तिपूर्वक वहाँ से भाग निकला और इन्दुरखी के गौड़ राजपूत राजा की शरण में चला गया। अपने पूर्ववत् कार्यक्रम के अनुसार जाट सेना ने आमान के आस–पास भी लूटमार प्रारम्भ कर दी, जिससे भयभीत होकर आस–पास के व्यक्ति गांव छोड़कर भग गये।[73]

इन विजयों से युवक राजा का उत्साह अत्यधिक बढ़ गया। अतः उसने भारी वर्षा के दिनों में ही भिण्ड और अटेर पर आक्रमण करके उन्हें भी अपने अधिकार में कर लिया। ये राज्य अभी तक मराठों को खण्डनी (राज्य कर) दिया करते थे। अब इन्होंन खण्डनी जवाहरसिंह को देना स्वीकार किया। भिण्ड और अटेर के राजाओं ने निर्विरोध उसकी अधीनता स्वीकार कर ली, तब

जवाहर का उत्साह और अधिक बढ़ गया। अब वह तेजी से अन्य क्षेत्रों पर भी अधिकार करने के लिए मुरावली होता हुआ समथर की ओर जाने वाला था, लेकिन इसी समय उसे समाचार मिले कि रामपुरा वालों ने विद्रोह कर दिया है, तब अपनी पूर्व योजना को स्थगित करके जवाहरसिंह परावरा गाँव के मार्ग से जुलाई 13, 1767 ई0 को रामपुरा की ओर गया। रामपुरा को घेर लिया गया। कुछ समय के बाद ही रामपुरा वाले जाटों की अधीनता स्वीकार करने को राजी हो गये।[74]

तब जवाहरसिंह ससैन्य कालपी क्षेत्र की ओर बढ़ा। वहाँ का मुख्य मराठा अधिकारी बालाजी गोविन्द खैर चाहता था कि जाट उसके क्षेत्र में उपद्रव व लूटमार नहीं करे, अतः पहले ही कृष्णाजी पंत को जवाहरसिंह के पास भेज कर, उसे तीन लाख रूपये देने का वादा किया। परन्तु जवाहरसिंह इससे सन्तुष्ट नहीं हुआ। इस समय बालाजी गोविन्द खैर और उनके साथी जालौन से कोई आठ मील उत्तर में स्थित सारावन गढ़ी में थे। एवं जवाहरसिंह ने एक सैनिक दल भेज कर कूँच पर अधिकार कर लिया। उधर जवाहरसिंह ने स्वयं ससैन्य बालाजी गोविन्द आदि पर जुलाई 16, 1767 ई0 में हमला किया। सारे मराठा सरदार वहाँ से भाग गये। उनके बाल–बच्चे रायपुर (जालौन) में थे, अतः उन्हें भी अपने साथ लेकर, वे सब बेतवा चले गये। जवाहरसिंह तब कुछ समय तक जालौन के आस–पास ही ठहर कर सारे क्षेत्र पर अपना आधिपत्य स्थापित करने में लगा रहा।[75] कालपी के सारे क्षेत्र को अपने अधिकार में लेने के बाद जवाहरसिंह कूँच गया और जुलाई 29, 1767 ई0 को वहाँ से समथर पहुँचा। समथर के गुजर राजा ने सहज ही जवाहरसिंह की

अधीनता स्वीकार कर ली और उसे 20–25 हजार रूपये देने का वादा किया।[76] जवाहरसिंह ने दतिया के राजा से भी कर वसूल किया और तद्नन्तर अगस्त, 1767 ई0 के प्रथम सप्ताह के लगभग वह नरवर की ओर चल पड़ा। मराठा संवादाता के शब्दों में 'कालपी प्रान्त, कछावाधार, भवदार, सिकरवार, डंड्रोली, खितोली आदि क्षेत्रों में सब ही स्थानों पर जाट (जवाहरसिंह) का आधिपत्य हो गया। केवल ग्वालियर और झांसी ही हमारे (मराठों के) अधिकार में रह गये हैं।[77]

जवाहरसिंह ने पुष्कर यात्रा के समय मराठों ने चम्बल पार का वह प्रदेश जो उससे जीत कर अपने अधीन कर लिया था पुनः विजित कर लिया। अतः उसने सिक्खों की सहायता से मराठों द्वारा हस्तगत किये गये क्षेत्रों पर चढ़ाई आरम्भ कर दी। इसके लिए उसने दानाशाह के नेतृत्व में एक सिक्ख सेना 1 जनवरी, 1768 ई0 को पहाड़ गाँव पर आक्रमण करने के लिए भेजी सिक्ख सेनापति दानाशाह ने मराठा सरदार बालाजी गोविन्द को युद्ध में परास्त कर दिया। बालाजी गोविन्द ने भाग कर कोटेरा में शरण ली।[78] इसी बीच कछवाहा शासक माधोसिंह के पुनः आक्रमण की सम्भावना से जवाहरसिंह को मराठों के विरूद्ध चल रही कार्यवाही को बीच में ही रोकना पड़ा। कामा के युद्ध के बाद, उसका माधोसिंह से समझौता होने के बाद, उसने पुनः मराठा क्षेत्रों पर आक्रमण आरम्भ किया तथा मराठों के विरूद्ध कार्यवाही को प्रभावशाली बनाने के लिए गोहद के राणा से मई, 1768 ई0 में समझौता किया जाट सेना का मनोबल बढ़ाने के उद्देश्य से जून, 1768 ई0 के अन्तिम सप्ताह में जवाहरसिंह स्वयं चम्बल पार भिण्ड क्षेत्र में पहुँचा और कुछ समय पश्चात् वह स्वयं तो

वापिस आ गया किन्तु उसने सिक्ख सेनापति दानाशाह और अपने छोटे भाई रतनसिंह को भिण्ड भेजा जहाँ उन्होंने धुवा के दुर्ग का घेरा डाला। किन्तु इसी समय एकाएक जाट राजा जवाहरसिंह की मृत्यु का समाचार पहुँचा। अतः जवाहरसिंह के मनोनीत उत्तराधिकारी रतनसिंह को घेरा उठाकर तत्काल ही वापिस डीग लौट जाना पड़ा। जिसके फलस्वरूप इस क्षेत्र में मराठा विरोधी जाट सेना की गतिविधियाँ शिथिल हो गई।

जवाहरसिंह अपने समय का एक शक्तिशाली और युद्ध प्रेमी राजा था। उसने अपनी ख्याति दूर–दूर तक प्रतिष्ठित की, और अपनी सामरिक कुशलता से सुदूर प्रदेशों पर प्रभाव स्थापित कर अपने पिता सूरजमल से प्राप्त राज्य को और अधिक विस्तृत कर दिया। जवाहरसिंह की मृत्यु के बाद जाट रजवाड़ा जो एक चरण में पूरब में गंगा से लेकर पश्चिम में आगरा तक और उत्तर में दिल्ली से लेकर दक्षिण में चम्बल तक फैला हुआ था, लगभग समाप्त ही हो गया।

****

सन्दर्भ

1. शेखर बंधोपाध्याय–पलासी से विभाजन तक, पृ0 31–32
2. सतीश चन्द्र–पार्टीज एण्ड पालिटिक्स ऐट द मुगल कोर्ट (1707 ई0–1740 ई0) अलीगढ़ 1959, पृ0 187.
3. जदुनाथ सरकार–फॉल ऑफ दी मुगल एम्पायर, भाग–2, पृ0 15–16.
4. मनोहर सिंह राणावत–भरतपुर महाराजा जवाहरसिंह जाट, पृ0 2
5. ईसरदास नागर–फुतूहात–ए–आलमगीरी, पृ0 53.
6. जदुनाथ सरकार–हिस्ट्री ऑफ औरंगजेब, भाग–3, पृ0 249.
7. जदुनाथ सरकार–मआसीर–ए–आलमगीरी, पृ0 58.
8. जदुनाथ सरकार–हिस्ट्री ऑफ औरंगजेब, भाग–3, पृ0 294.
9. ईसरदास नागर–फुतूहात–ए–आलमगीरी, पृ0 53 अ.
10. ईसरदास नागर–फुतूहात–ए–आलमगीरी, पृ0 53 अ, 53 ब.
11. जदुनाथ सरकार–मआसीर–ए–आलमगीरी, पृ0 58.
12. जदुनाथ सरकार–हिस्ट्री ऑफ औरंगजेब, भाग–3, पृ0 296, भाग–5, पृ0 237.
13. ईसरदास नागर–फुतूहात–ए–आलमगीरी, पृ0 164.
14. ईसरदास नागर–फुतूहात–ए–आलमगीरी, पृ0 131 ब.
15. जदुनाथ सरकार–मआसीर–ए–आलमगीरी, पृ0 189.
16. ईसरदास नागर–फुतूहात–ए–आलमगीरी, पृ0 132 ब.
17. स्टोरिया डी मोगोर मनुची–विलियम इर्विन द्वारा अनुवादित एवं संपादित जिल्दें, भाग–2, पृ0 320.

18. जदुनाथ सरकार–हिस्ट्री ऑफ औरंगजेब, भाग–5, पृ0 242.

19. जदुनाथ सरकार–हिस्ट्री ऑफ औरंगजेब, भाग–5, पृ0 243.

20. ईसरदास नागर–फुतूहात–ए–आलमगीरी, पृ0 135 ब.

21. उपर्युक्त, पृ0 136 अ–136 ब.

22. उपर्युक्त, पृ0 136 ब–137 अ.

23. जदुनाथ सरकार–मआसीर–ए–आलमगीरी, पृ0 205.

24. के0आर0 कानूनगो–हिस्ट्री ऑफ जाटस, पृ0 46–47.

25. सतीश चन्द्र–पार्टीज एण्ड पालिटिक्स ऐट द मुगल कोर्ट (1707 ई0–1740 ई0) अलीगढ़ 1959, पृ0 122.

26. के0आर0 कानूनगो–हिस्ट्री ऑफ जाटस, पृ0 48.

27. के0आर0 कानूनगो–हिस्ट्री ऑफ जाटस, पृ0 49.

28. के0आर0 कानूनगो–हिस्ट्री ऑफ जाटस, पृ0 50.

29. उपर्युक्त, पृ0 51.

30. सतीश चन्द्र–पार्टीज एण्ड पालिटिक्स ऐट द मुगल कोर्ट (1707 ई0–1740 ई0) अलीगढ़ 1959, पृ0 123.

31. के0आर0 कानूनगो–हिस्ट्री ऑफ जाटस, पृ0 57–58.

32. सतीश चन्द्र–पार्टीज एण्ड पालिटिक्स ऐट द मुगल कोर्ट (1707 ई0–1740 ई0) अलीगढ़ 1959, पृ0 178.

33. जदुनाथ सरकार–फॉल ऑफ दी मुगल एम्पायर, भाग–2, पृ0 314.

34. इलियट व डाउसन–भारत का इतिहास, भाग–8, पृ0 361.

35. जदुनाथ सरकार–फॉल ऑफ दी मुगल एम्पायर, भाग–2, पृ0 315–316.

36. राम पाण्डे–भरतपुर आप टू 1826, पृ0 1947.

37. तारीख–ए–अहमदशाही–अज्ञात सरकार संग्रह रा0पु0 कलकत्ता, 43 बी–45 ए.

38. नटवरसिंह–महाराजा सूरजमल–1707 ई0–1763 ई0 (हिन्दी अनुवादक–वीरजी) प्रथम संस्करण, पृ0 42

39. उपर्युक्त, पृ0 42.

40. नटवरसिंह–महाराजा सूरजमल, 1707 ई–1763 ई0 (हिन्दी अनुवादक–वीरजी) प्रथम संस्करण, पृ0 43.

41. उपर्युक्त, पृ0 47.

42. उपर्युक्त, पृ0 44.

43. उपर्युक्त, पृ0 44.

44. जेम्स फर्ग्यूसन–हिस्ट्री ऑफ इण्डियन आर्किटेक्ट, पृ0 256.

45. जदुनाथ सरकार–मुगल साम्राज्य का पतन, भाग–2, पृ0 272

46. तारीख–ए–आलमगीर सानी–अज्ञात, सरकार संग्रह, रा0पु0 कलकत्ता, पृ0 22 अ.

47. उपर्युक्त, पृ0 22 ब.

48. तारीख–ए–आलमगीर सानी–अज्ञात सरकार संग्रह, रा0पु0 कलकत्ता, पृ0 26

49. तारीख–ए–आलमगीर सानी–अज्ञात सरकार संग्रह, रा0पु0 कलकत्ता, पृ0 28–29 ब.

50. पी0सी0 चान्दावत–महाराजा सूरजमल और उनका युग, पृ0 121–123.

51. यहाँ का प्रमुख जाटों की देशववाल शाखा के बामरौलिया परिवार से सम्बन्धित था। तोमर शासक मानसिंह ने जाट सरदार सिंह देव द्वितीय

को 1505 ई0 के लगभग गोहद सहित पाँच ग्रामों की जागीर प्रदान की थी इसके पश्चात् यहाँ जाटों ने अपनी शक्ति को संगठित किया। अजय अग्निहोत्री, पृ0 22.

52. पी0सी0 चान्दावत–महाराजा सूरजमल और उनका युग, पृ0 124.

53. गोविन्द सखाराम सरदेसाई–सिलेक्शन्स फ्राम पेशवा दफ्तर XXVII पत्र 60.

54. तारीख–ए–आलमगीर सानी–अज्ञात संग्रह रा0पु0 कलकत्ता, पृ0 61

55. पी0सी0 चान्दावत–महाराजा सूरजमल और उनका युग, पृ0 126.

56. गोविन्द सखाराम सरदेसाई–सिलेक्शन्स फ्राम पेशवा दफ्तर II पत्र 54 व 56.

57. उपर्युक्त, पत्र 54 व 56.

58. तारीख–ए–आलमगीर सानी–अज्ञात संग्रह रा0पु0 कलकत्ता, पृ0 61

59. उपर्युक्त, 82 ब.

60. (i) उपर्युक्त, पृ0 83 ब.

61. जदुनाथ सरकार–मुगल साम्राज्य का पतन, भाग–2, पृ0 269.

62. पी0सी0 चान्दावत–महाराजा सूरजमल और उनका युग, पृ0 54.

कवि सूदन–सुजान चरित्र, पृ0 7–8.

63. पी0सी0 चान्दावत–महाराजा सूरजमल और उनका युग, पृ0 201–202.

64. पी0सी0 चान्दावत–महाराजा सूरजमल और उनका युग, पृ0 202.

65. पी0सी0 चान्दावत–महाराजा सूरजमल और उनका युग, पृ0 205

66. जदुनाथ सरकार–फॉल ऑफ दी मुगल एम्पायर, भाग–2, पृ0 234.

67. उपर्युक्त, पृ0 335.

68. उपर्युक्त, पृ0 335

69. फादर बैण्डल–एन अकाउण्ट ऑफ दी जाट किंगडम, पृ0 95.

70. के0आर0 कानूनगो–हिस्ट्री ऑफ जाटस, पृ0 172.

71. मनोहरसिंह राणावत–महाराजा जवाहरसिंह जाट, पृ0 39–40.

72. फादर बैण्डल–एम अकाउण्ट ऑफ दी किंगडम पृ0 97.

73. मनोहरसिंह राणावत–महाराजा जवाहरसिंह जाट, पृ0 40.

74. मनोहरसिंह राणावत–महाराजा जवाहरसिंह जाट, पृ0 65.

75. मनोहरसिंह राणावत–महाराजा जवाहरसिंह जाट, पृ0 66.

76. मनोहरसिंह राणावत–महाराजा जवाहरसिंह जाट, पृ0 66.

77. जी0एस0 सरदेसाई–सलेक्शन फ्रॉम पेशवा दफ्तर (नई) 3, पृ0 130, 131.

78. जदुनाथ सरकार–फॉल ऑफ दी मुगल एम्पायर, भाग–2, पृ0 347–48.

79. मनोहरसिंह राणावत–महाराजा जवाहरसिंह जाट, पृ0 86.

****

जाट–मराठा सम्बन्ध

अठारहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में उत्तर भारत की समकालीन परिस्थितियों में एक विद्रोह से शुरू होकर जाट राज्य की स्थापना तक जाट कही अधिक सबल राजनीतिक शक्ति के रूप में दिखायी देते है। वही मराठों ने दक्षिण भारत में अपनी राजनीतिक स्थिति सुदृढ़ करने के उपरान्त उत्तर भारत में हस्तक्षेप एवं प्रसार की नीति अपनायी। मराठों एवं मुगल सम्राट के बीच 1752 की सन्धि ने मराठों को उत्तर भारत में हस्तक्षेप करने का सुदृढ़ अवसर प्रदान किया। अतः बदलते राजनीतिक परिस्थितियों में जाट–मराठों के बीच युद्ध व सन्धि के रूप सम्बन्धों का आगाज होता है।

जाट और मराठों के बीच पहली प्रत्यक्ष मुलाकात जयपुर राज्य के उत्तराधिकार युद्ध में हुई जब बदनसिंह ने मराठों से लोहा लिया। सन् 1743 ई0 में जयपुर के राजा सवाई जयसिंह की मृत्यु हो गई और उसके दो पुत्रों ईश्वरीसिंह और माधोसिंह में उत्तराधिकार युद्ध आरम्भ हो गया। ईश्वरीसिंह ज्येष्ठ पुत्र होने के कारण वैधानिक उत्तराधिकारी था परन्तु माधोसिंह जो उदयपुर की राजकुमारी से पैदा हुआ था अपने को गद्दी का वैध उत्तराधिकारी मानता था।[1] माधोसिंह ने मराठों से सहायता की याचना की और ईश्वरीसिंह ने बदनसिंह से सहायता की प्रार्थना की। बदनसिंह भली भाँति समझता था कि माधोसिंह से टक्कर का तात्पर्य मराठों से ही युद्ध करना है परन्तु जाट राजा बदनसिंह ने इस अवसर पर ईश्वरीसिंह की मदद के लिए अपने बेटे सूरजमल के नेतृत्व में जाट सेना भेज दी। मोतीडूंगरी के युद्ध में जब जयपुर सेना में भगदड़ मच गई तब सूरजमल ने ही वीरतापूर्वक मराठों को पीछे धकेल दिया।

इससे माधोसिंह के विरूद्ध ईश्वरीसिंह की विजय हुई। बदनसिंह की रणनीतिक कुशलता व कुशल नेतृत्व के कारण ही उत्तराधिकार युद्ध में ईश्वरी सिंह को सफलता मिली। बदनसिंह ने ईश्वरी सिंह को समर्थन देकर अपनी स्थिति राजपूतों, मुगलों तथा मराठों में दृढ़ कर ली।

सन् 1748 ई0 में सम्राट अहमदशाह ने अवध के नवाब मंसूर अली सफदरगंज को साम्राज्य का वजीर नियुक्त किया और उसे नवाब वजीर की उपाधि से सम्मानित किया। रोहिल्ला सरदार अवध के क्षेत्र में निरन्तर अतिक्रमण करते रहते थे। उन्हें दण्डित करने के लिये सफदरजंग ने मराठों तथा सूरजमल को मदद के लिए कहा। इस प्रकार तीनों की सम्मिलित सेना ने रोहिलों को परास्त कर दिया परन्तु सफदरजंग की अनुशासनहीन सेना ने बना बनाया काम बिगाड़ दिया। नवाब मंसूरअली खाँ सफदरजंग के मैदान छोड़ने पर भी सूरजमल युद्ध में डटा रहा और अपनी वीरता का परिचय दिया। 1750 ई0 के अन्त में नवाब मंसूरअली खाँ ने सेना को पुनर्गठित कर पुनः आक्रमण की योजना बनाई, उसने जयप्पा सिन्धिया, मल्हारराव होल्कर और सूरजमल को एक बड़ी रकम प्रतिदिन देने का वचन देकर अपनी ओर कर लिया। सम्मिलित शक्ति के समक्ष रूहेलों ने हथियार डाल दिए। विजित प्रदेश को नवाब वजीर, मराठों तथा सूरजमल ने समान रूप से बाँट लिया।

प्रथम बार प्रतिद्वन्द्वी व दूसरे युद्ध में सहयोगी जाट–मराठा सम्बन्धों में परिवर्तन भी होते रहे। मुगल साम्राज्य में नवाब सफदरजंग के भ्रष्टाचार तथा प्रशासकीय अयोग्यता के फलस्वरूप सत्ता के लिए षडयंत्र आरंभ हो गये। पूर्व वजीर इमादुलमुल्क गाजीउद्दीन ने 1752 ई0 में मराठों से सन्धि कर ली। मराठे

पुराने मित्रों मुगलों तथा जाटों को छोड़ कर इस गृहयुद्ध में इमादुलमुल्क के पक्ष में लड़ने को तैयार हो गये। 1753 ई0 में मंसूर अली सफदरजंग ने जाटों के संग मिलकर शाही सेना पर आक्रमण कर दिया और अनेक मराठों का कत्ल कर दिया गया। इस घटना ने आग में घी का काम किया। मंसूर अली खाँ की स्थिति दिन प्रतिदिन बिगड़ती जा रही थी। मराठों और जाटों में भी झड़प हुई जिसमें जाट परास्त हो गये। मराठों ने जाटों के फलते–फूलते क्षेत्र को भी लूटा। सम्बन्धों के बदलते आयामों में जाट–मराठों के बीच प्रत्यक्ष भिड़न्त अब आवश्यक हो गई। 1754 –55 ई0 में जाटों और मराठों की लड़ाई जाट क्षेत्र में हुई। 1752 ई0 की सन्धि के अनुसार आगरा और आमेर के सूबे मराठों को दे दिये गये थे। उस समय इमादुलमुल्क साम्राज्य का वजीर बन गया था। आगरा सूबा भरतपुर के क्षेत्र के समीप था। इमादुलमुल्क और मंसूर अली सफदरगंज के बीच जब गृहयुद्ध हुआ था तो बदनसिंह के उत्तराधिकारी सूरजमल ने मंसूर अली खाँ सफदरगंज का साथ दिया था। अब इमादुलमुल्क के पास सत्ता थी। इसलिए वह सूरजमल को दण्डित करना चाहता था परन्तु वह अकेला ऐसा नहीं कर सकता था। इसीलिए उसने मल्हारराव होल्कर को जाटों पर आक्रमण करने के लिए आमंत्रित किया। मल्हारराव होल्कर ने तुरन्त अपने पुत्र खाण्डेराव को विश्वासघातियों को दण्ड देने के लिए दिल्ली रवाना किया। दिल्ली पहुँचने पर इन्होंने मिलकर सूरजमल के विरूद्ध युद्ध की योजना बनाई। इधर सूरजमल गृहयुद्ध में भाग लेने की वजह से थका माँदा था और युद्ध नही चाहता था। उसने अपने विश्वस्त ब्राह्मण रूपराम कटारी को मराठा शिविर में भेजकर मराठा मित्रता करनी चाही और बदले में 40 लाख रूपये देने का वायदा किया। परन्तु मराठों के नेता रघुनाथराव ने एक करोड़ की मांग की

जिसे सूरजमल ने स्वीकार नहीं किया। बल्कि कुछ बारूद और गोले दागकर यह प्रदर्शित किया कि वह युद्ध के लिए भी तैयार है।[2] इमादुलमुल्क की मदद और जयपुर सेना के सहयोग से रघुनाथराव ने कुम्हेर पर आक्रमण कर दिया।

यह घटना 20 जनवरी, 1754 ई0 की है। मराठा सेनाओं ने कुम्हेर के निकट पिंगोर गाँव में अपना शिविर स्थापित करके जाटों के विरूद्ध युद्ध शुरू कर दिया। सूरजमल जो कुम्हेर दुर्ग के भीतर भारी मात्रा में खाद्यान्न एवं शस्त्र सामग्री जमा कर चुका था, एक शक्तिशाली सेना के साथ मराठा सेना का सामना करने के लिए मैदान में निकल आया, जहाँ एक भीषण युद्ध में दोनों पक्षों के सैकड़ों सैनिक मारे गये।[3] मराठा सेनाओं ने आगे बढ़कर किले के ठीक सामने अपने मोर्चे कायम कर लिये और दुर्ग को चारों ओर से घेर लिया। यह घेरा लगभग चार महीने (18 मई तक) चला।

मराठों ने हथनाल, शत्रुनाल, बंदूक व जेजाला आदि से आक्रमण प्रारम्भ कर दिया, जाटों ने भी दुर्ग की प्राचीर से निरन्तर गोलाबारी की, जो 15 दिन तक चलती रही, किन्तु दुर्ग अजेय रहा। रेतीली भूमि होने के कारण मराठों का सुरंगें लगाने का प्रयास असफल रहा। मराठों द्वारा अपनी तोपों को नीचा करने पर गोला रेत में चला जाता था और ऊपर करने पर दुर्ग को पार करके दूसरी तरफ उन्हीं के मोर्चो पर गिरता था।[4] इस कारण घेरा लम्बा होता गया, किन्तु मराठा सैनिक टुकड़ियाँ जाट प्रदेश में काफी दूर–दूर तक फैल गयीं और कुछ ही समय में जाटों के चार दुर्गो (भरतपुर, कुम्हेर, वेर व डीग) को छोड़कर लगभग सम्पूर्ण जाट प्रदेश पर मराठों का अधिकार हो गया। 3 फरवरी को

मराठा सरदार रामाजी ने जाट अधिकारियों को निकालकर आगरा शहर पर भी अधिकार कर लिया।[5]

कुछ समय उपरान्त मल्हारराव होल्कर के बुलाने पर इमादुलमुल्क भी राजधानी से कुम्हेर के लिए रवाना हुआ। रास्ते में जब वह मथुरा में लूटपाट कर रहा था, तो पता चलने पर मल्हारराव होल्कर ने उसे ऐसा करने से रोका। इमादुलमुल्क अपने सहायक अकीबत के साथ मेवात में जाट गाँवों को लूटता हुआ मार्च के प्रारम्भ में कुम्हेर पहुँचकर मराठा सेना में शामिल हो गया। दुर्ग की घेराबन्दी को तोड़ने में असफल मराठों ने इमादुलमुल्क के द्वारा शाही तोपखाने से बड़ी तोपों की माँग की। इमादुलमुल्क ने अपने सहायक अकीबत महमूद खान को धूमधानी, किलाकशा, धूमक और आलमसितानी नामक विशाल तोपें लाने के लिए सम्राट के पास भेजा।[6]

वजीर इन्तिजामुद्दौला ने भी, जो मराठों के प्रति कुदृष्टि रखता था अपने भतीजे इमादुलमुल्क की सफलता नहीं चाहता था। सम्राट को चतुरतापूर्वक सलाह दी कि अगर मराठों को युद्ध सामग्री, सूरजमल से जीते हुए दुर्ग, जाटों की सम्पत्ति तथा शाही तोपखाना दुर्दान्त एवं बेईमान इमादुलमुल्क के हाथें में आ गया, तो उसकी महत्वाकांक्षाऐं कल्पना की सभी सीमाओं को लांघ जाएगी।[7] सम्राट ने वजीर से सहमति प्रकट की और जब अकीबत आगरा पहुँचा, तो वहाँ के किलेदार ने शाही आदेशानुसार तोपें देने से इन्कार कर दिया। 16 मार्च को अकीबत दिल्ली पहुँचा और जब वजीर ने तोपें देने से मना कर दिया, तो उसने विद्रोह भाव प्रदर्शित किया।[8] सम्राट इमादुलमुल्क की तानाशाही से भयभीत हो गया तथा अकीबत के विद्रोह ने उसके संदेह को पुष्ट

कर दिया। इसी मध्य 17 मार्च को मल्हारराव होल्कर के इकलौते पुत्र 30 वर्षीय खाण्डेराव होल्कर की मृत्यु से मराठा शिविर में सन्नाटा छा गया। घटना के दिन खाण्डेराव होल्कर जो अपना मोर्चा दुर्ग की दीवार तक ले जाने में सफल रहा था, पालकी में बैठकर खाईयों का निरीक्षण कर रहा था। अचानक दुर्ग से गोलाबारी शुरू हो गई और एक जम्बूरे का गोला लगने से उसकी वहीं मृत्यु हो गई।[9] फलस्वरूप युद्ध कुछ दिनों के लिए स्थगित हो गया। रघुनाथराव सहित अन्य सरदारों ने मल्हारराव होल्कर को धीरज बंधाया और इमादुलमुल्क ने संवदेना प्रकट करते हुए कहा, ''अब से आप खाण्डू के साथ मुझे अपना पुत्र समझें।[10] सूरजमल ने भी मल्हारराव होल्कर तथा खाण्डेराव के पुत्र मालेराव को शोक सूचक वस्त्र भेजते हुए खेद व्यक्त किया। सम्राट ने भी शोक प्रकट किया।

1 अप्रैल को युद्ध पुनः आरम्भ हो गया। उसी रात्रि को सूरजमल दुर्ग से बाहर निकलकर हरगोविन्द नाटाणी के घेरे की ओर लौटकर किले के अन्दर से आक्रमण शुरू कर दिया, जिसमें अनेक मराठे मारे गए। मल्हार जो अपने पुत्र के अन्त्येष्टि कर्म करने मथुरा गया हुआ था, 4 तारीख को लौटकर मराठा शिविर में आया। प्रतिशोध की ज्वाला में मराठा सेनाओं ने दुगुने वेग से जाटों पर प्रहार शुरू कर दिये। मल्हारराव होल्कर ने शाही तोपें न पहुँचने पर रूष्ट होकर अपने दीवान गंगाधर यशवंत तांत्या को अन्य स्थानों से अधिक से अधिक तोपों की व्यवस्था करने के लिए कहा, ताकि वह जाटों को नष्ट करने की अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर सकें। फतहसिंह बड़गूजर को भेज कर घसेरा से तोप मँगवाई गई और राजश्री अप्पाजी को उज्जैन से तथा मुजफ्फर खान

गारदी को अपना तोपखाना भेजने के लिए लिखा गया। मालवा और इन्दौर से भी तोपखाना भेजने के सम्बन्ध में पत्र लिखे गए।[11]

मल्हारराव के पत्राचार के विरूद्ध अपनी कूटनीति रणनीति के तहत सूरजमल ने वजीर इन्तिजाम को पत्र लिखा कि, ''अगर उन्होंने मराठा एवं मीर शहाबुद्दीन (इमादुलमुल्क) को अपनी योजना पर चलने दिया, तो एक समय आएगा जब वह वजीर के पद के साथ सिंहासन पर भी अपनी आँखें गढ़ाएगा और सरकार बदलने का प्रयास करेगा, ताकि नया शासन उसके अनुकूल हो। इसलिए शाही हित में वह सलाह देता है कि इन परिस्थितियों में क्या यह उचित नहीं होगा कि सम्राट अपने मंत्री तथा सेना के साथ, शिकार एवं शाही भूमि के निरीक्षण के बहाने से सिकन्दरा की तरफ बढ़ें, जहाँ पर शामिल होने के लिए अब्दुल मंसूर खान को बुलाया जाय, जो मराठों व मीर शहाबुद्दीन को नष्ट करने हेतु साथ देने में नहीं चूकेगा।''[12] सूरजमल की योजना थी कि सम्राट अलीगढ़ पहुँचे और वहाँ तब तक रूकें, जब तक कि नवाब सफदरजंग वहाँ न पहुँच जाय। अवध से आने वाली सेना के पहुँचते ही उसे तेजी से आगरा की ओर प्रस्थान करना था, जहाँ कछवाहा एवं राठौड़ राजाओं को अपनी–अपनी सेनाओं के साथ उसके साथ मिलना था। योजना चम्बल पर घेरा बनाने की थी, ताकि शत्रु बचकर नहीं जा सके। अगर मराठें कुम्हेर का घेरा उठाकर आगरा पर आक्रमण करते हैं, तो सूरजमल उनके पीछे से आकर सम्राट के साथ सम्मिलित हो जाएगा।[13]

सूरजमल की सलाह सम्राट एवं वजीर द्वारा स्वीकृत कर ली गई। जब सभी ओर से उत्साहजनक जवाब आ गए तो सम्राट 27 अप्रैल को अपने हरम,

सेना व तोपखाने के साथ शिकार–ए–काफिले पर राजधानी से रवाना हुआ।[14] सफदरजंग भी गंगा के किनारे मेंहदीघाट (कन्नौज के किनारे) पहुँचकर सम्राट के अलीगढ़ पहुँचने की प्रतीक्षा करने लगा। परन्तु सम्राट जैसा कि निश्चय किया गया था, अलीगढ़ पहुँचकर सुदृढ़ दुर्ग में शरण पाने की अपेक्षा मूढ़तावश सिकन्दराबाद (17 मई) के पड़ोस में समय गंवाता रहा। फलस्वरूप वह सफदरजंग के दल से प्रतिकूल स्थिति में हो गया। इस प्रकार सम्राट सूरजमल की सलाह के इस भाग पर विलम्ब एवं अनिच्छा से कार्य करता दिखाई दिया, जिसे वजीर एवं उसकी माता मलिका जमानी ने भी पसन्द नहीं किया।[15]

सम्राट के शिविर की इन मंत्रणाओं और अनिश्चय के समाचार मीर शहाबुद्दीन को मिल गए, जो अत्यधिक सतर्क और अपनी योजना पर ध्येयरत था। इमादुलमुल्क ने इन गतिविधियों का अवलोकन पूरी गम्भीरता से किया और होल्कर की सहायता से वह सम्राट को परास्त करने के लिए तैयार हो गया। इसके परिणाम स्वरूप इमादुलमुल्क का ध्यान कुम्हेर से हटकर सम्राट की योजना को विफल करने में लग गया इसी उद्देश्य से उसने अपने षड्यन्त्रकारी दूत अकीबत खाँ को सम्राट के शिविर में भेजा।[16] इस प्रकार सूरजमल की उपर्युक्त योजना ने इमाद पर दबाब का काम किया।

दूसरी और भाऊ बखर के लेखक के अनुसार सूरजमल ने जयप्पा सिन्धिया को सन्देश भेजा, ''आप कब तक मेरी प्रतिक्षा करेगें? या तो आप सहायता करने आओ या आक्रमण करके मुझे मारो।'' इस पर जयप्पा सिन्धिया अपने सलाहकारों के साथ मन्त्रणा करने के पश्चात् रघुनाथ राव के पास गया और कहा, ''दादा साहब मैं साधारण घुड़सवार हूँ, नमक हराम नहीं हूँ। ऐसी

स्थिति में जो कहूँगा, उसे आप पसन्द नहीं करेगें। इस समय जाटों से खंडणी लेकर इस अभियान को पूरा करो। अगर हम यहाँ एक स्थान पर लम्बे समय तक रहेंगे, तो भारी पड़ेगा।'' इस पर रघुनाथराव बड़ी दुविधा में फँस गया। उसने सखाराम बापू से इस प्रश्न पर सलाह मशवरा किया कि अगर शत्रु से समझौता करते है, तो मल्हारराव होल्कर को खो बैठते हैं और नहीं करते हैं तो अपनी बातें समाप्त होती हैं, इसका उपाय क्या किया जाए? जब जयप्पा सिन्धिया ने अपनी सेना के साथ कूच करने की धमकी दी, तो इस विकट समस्या पर वार्ता करने के लिए रघुनाथराव, मल्हारराव होल्कर के पास गया और कहा, शिन्दे तो जा रहा है। तुम वरिष्ठ होने के नाते मुझे क्या सलाह देते हो? मल्हारराव होल्कर ने यह अनुभव किया कि उसके अकेले दुराग्रह करने पर सारे परिणामों की जिम्मेदारी उसी पर होगी और अगर वह रघुनाथराव की सलाह पर ध्यान नहीं देता है तो यहाँ भी उसे कोई लाभ नहीं है। यह सोचकर उसने रघुनाथराव से कहा कि वह उसके स्वामी है, और जिसमें वह प्रसन्न है, वह उसे स्वीकार है। इस प्रत्युत्तर का श्रेष्ठ उपयोग करते हुए रघुनाथराव जयप्पा सिन्धिया के पास आया और उसकी रवानगी को रोककर उसे जाटों के साथ सुलह करने की स्वीकृति दे दी।[17] इस विवरण से स्पष्ट पता चलता है कि कम्हेर के दुर्ग में घिरे सूरजमल को गम्भीर स्थिति से उबारने में जयप्पा सिन्धिया की भूमिका सर्वाधिक महत्वपूर्ण रही। अगले दिन इमादुलमुल्क व मल्हारराव होल्कर मथुरा तथा 22 मई को जयप्पा नारनौल के लिए रवाना हो गए। इस सन्धि से सूरजमल ने बहुत बड़ी राहत महसूस की, अतः उसने शाही खेमे की ओर जाने का विचार बदल दिया। 26 मई को मल्हारराव होल्कर द्वारा सिकन्दारबाद के शाही शिविर पर आक्रमण और 2 जून को इमादुलमुल्क द्वारा

मराठों की सहायता से वजीर एवं सम्राट की क्रमशः पदच्युति उपयुक्त घटनाक्रम की पुष्टि करती है।

जाट–मराठा सम्बन्ध में युद्ध व मित्र की भूमिका अफगान आक्रमण के समय भी दिखाई देती है। इस समय अहमदशाह अब्दाली पंजाब पर अपना आधिपत्य कर दिल्ली की ओर बढ़ रहा था। उसका प्रमुख लक्ष्य मराठों को उत्तर भारत से भगाना था। दिल्ली में अपना प्रभुत्व स्थापित कर अहमदशाह ने उत्तर भारत की शक्तियों से नजराना पेश करने को कहा। चूंकि सूरजमल मराठों का विश्वसनीय मित्र माना जाता था अहमदशाह अब्दाली ने उसे धमकी भरे पत्र भेजे। सूरजमल वस्तुतः अफगानों और मराठों दोनों को ही उत्तर भारत के लिए खतरा मानता था। स्थिति की विषमता और भयावहता को समझ कर सूरजमल ने अहमदशाह अब्दाली के शिविर में अपने दूत भेजे जिन्होंने सूरजमल की अधीनता की बात कही। सूरजमल उस प्रार्थना पत्र में भी सम्मिलित था जिसमें नजीबुद्दौला, इन्त्याजामुद्दौला और इमादुलमुल्क के अन्य शत्रुओं ने अहमदशाह अब्दाली को परामर्श दिया था। कि शाह अगर मल्हारराव होल्कर और रघुनाथ राव के पगड़ी बदल भाई वजीर इमादुलमुल्क को बन्दी बना कर अटक पार भेज दें और इन्तिजाम को वजीर पद सौंप दे तो वे सब मिलकर शाह को 2 करोड़ रूपया देगें।[18]

किन्तु अहमदशाह अब्दाली ने सूरजमल के प्रस्तावों को कोई विशेष महत्व प्रदान नहीं किया और दिल्ली को लूटने के दौरान जब नजीबुद्दौला ने उसे बताया कि न केवल सूरजमल जाट के पास अपार धन है, बल्कि दिल्ली के अधिकांश लोगों ने उसके राज्य में शरण ले रखी है, तो अहमदशाह अब्दाली

ने सूरजमल के पास अपने दूत इस संदेश के साथ भेजे, कि वह शाह के समक्ष उपस्थित होकर नजराना पेश करे और उसके झण्डे के नीचे सेवा करें। उसे यह भी कहा गया कि वह नागरमल सहित दिल्ली के सम्पन्न शरणार्थियों को तुरन्त लौटा दें। इस पर सूरजमल ने कूटनीतिक भाषा में उत्तर भेजते हुए शरणार्थियों को लौटाने से इनकार कर दिया। उसने लिखा कि ''जब अग्रणी जमींदार शाही दरबार में उपस्थित हो चुके हैं, यह गुलाम भी शाही देहलीज का चुम्बन करेगा। मैं राजा नागरमल और दूसरे लोगों को कैसे भेज सकता हूँ जिन्होंने मेरे पास शरण पाई है?[19] सूरजमल ने सन्धि की शर्तों पर बातचीत के लिए आक्रान्ता के डेरे पर अपना दूत भेज दिया, साथ ही अफगान मन्त्री को दो लाख रूपये घूस में दिए, ताकि टालमटोल द्वारा कुछ समय निकाला जाये।

इन परिस्थितियों में सूरजमल ने मराठों से सम्बन्ध बनाने का प्रयास किया, यहाँ यह उल्लेखनीय है कि फरीदाबाद की रक्षार्थ जाट और मराठों ने बिना आपसी समझौते के संयुक्त रूप से अहमदशाह अब्दाली का प्रतिरोध किया था। इस युद्ध में मराठा सेना की कमान अन्ताजी माणकेश्वर के पास थी इस युद्ध में अन्ताजी माणकेश्वर की पराजय हुई और उसे सूरजमल के प्रदेश मथुरा में शरण लेनी पड़ी। इन परिस्थितियों में अन्ताजी माणकेश्वर ने इस तथ्य को भी भलीभाँति समझ लिया था कि अब केवल जाटों के सहयोग से ही आक्रान्ता का प्रतिरोध और मराठा हितों की रक्षा सम्भव है।[20] अतएव दोनों ओर से समझौते की संभावनाऐं प्रबल होने लगी। इसको लेकर एक दूसरे को पत्र लिखे गए।

सूरजमल ने स्पष्ट रूप से मराठों के दूत अन्ताजी माणकेश्वर से कहा कि अब्दाली ने मुझको पत्र लिखा कि भेंट व नजराना पेश करो और अधिकृत प्रदेश को छोड़कर चाकरी करने आओ। किन्तु मैं न तो शाह के सामने उपस्थित होना चाहता हूँ और न उससे लड़ना चाहता हूँ। वकील भेजकर पैसों के बारे में बातचीत करने में मैंने 15 दिन निकाल दिए हैं। अगर आप दक्षिण से मराठा सेना के शीघ्र पहुँचने का भरोसा दिलाते हैं, तो मैं दरबार में लाख दो लाख रूपया खर्च करके कुछ और समय निकाल सकता हूँ। तब तक अगर आपकी फौज आ जाती है, तो मैं आपका साथ देने को तैयार हूँ और अहमदशाह अब्दाली को एक कौड़ी पैसा भी नहीं देने वाला हूँ।[21]

अब्दाली के विरूद्ध सूरजमल के समझौते ''जैसे व्यवहारिक सुझाव पर मराठों ने ईमानदारी से अमल नहीं किया।'' जहाँ तक अन्ताजी माणकेश्वर का प्रश्न है, उसने इस अवधि में लिखे गए पत्रों द्वारा पेशवा और रघुनाथराव को सही स्थिति से पूर्णतया अवगत करा दिया था और मराठा सेनाओं के शीघ्र पहुँचने के बारे में निरन्तर लिखता रहा। इसी मध्य अहमदशाह अब्दाली ने जाटों पर आक्रमण करने का निश्चय किया और उसने अपने सेनापति जहान खान और नजीबुद्दौला को बीस हजार की सेना के साथ, इस निर्देश से रवाना किया कि ''इन दुष्ट जाटों के प्रदेश को रौंद डालो। उनके प्रत्येक कस्बे और जिले को लूटों और लोगों को मौत के घाट उतार डालो। हिन्दुओं के पवित्र नगर मथुरा को तलवार से बिल्कुल साफ कर दो। आगरा तक एक भी स्थान मत छोड़ों।'' शाह ने अपनी सेना को एक सामान्य आदेश दिया कि वे जहाँ भी

पहुँचे, खूब लूटें और मारें। लूट की सम्पत्ति उनकी मानी जायगी और काफिरों के सिर काटकर लाने वाले को प्रति सिर पाँच रूपये दिए जायेंगे।[22]

इस निर्देश के बाद अब्दाली की सेना ने मथुरा में प्रवेश किया और तीन दिन तक लूटमार और कत्लेआम का दौर चलता रहा। इसके बाद गोकुल व वृन्दावन में लूट व हत्या का दौर चला। इसी बीच अहमदशाह अब्दाली स्वयं मथुरा पहुँच गया और मृत लोगों की दुर्गन्ध से बचने के लिए उसने जमुना पार करके पश्चिमी तट पर नगर से दक्षिण–पूर्व में 6 मील की दूरी पर महावन में अपना शिविर स्थापित कर लिया। अब अहमदशाह अब्दाली ने अपने सेनापति जहान खान व नजीबुद्दौला को आगरा को लूटने के लिए भेजा। अहमदशाह अब्दाली की सेना में महामारी फैल गई और महामारी का प्रकोप इतना अधिक था कि अहमदशाह अब्दाली को तुरन्त दिल्ली के लिए लौटना पड़ा।[23] जिससे जाट प्रदेश शत्रु सेना से खाली हो गया। इस प्रकार अहमदशाह अब्दाली का यह अभियान सैनिक दृष्टि से असफल रहा क्योंकि वह न तो जाट राजा को घुटने टेकने के लिए बाध्य कर सका और न ही उसकी सैनिक शक्ति व दुर्गों को हानि पहुँचा सका।

यह समाचार आग की लपटों की तरह चारों ओर फैल गया। दिल्ली में एक बार फिर भगदड़ मच गई और लोग सुरक्षा के लिए जाट राज्य की ओर भागते दिखाई दिये। शाह के क्रोध से बचने के लिए भयभीत वजीर सुरक्षा के लिए सूरजमल के सुदृढ़ दुर्ग कुम्हेर में पहुँचा। वैण्डल तथा गुलामअली के अनुसार, ''यह वहीं गाजीउद्दीन (इमादुलमुल्क) था, जिसने कुछ ही वर्ष पूर्व सूरजमल को नष्ट करने के लिए हिन्दुस्तान की सारी शक्तियों को संगठित

किया था और उन दीवारों के प्रति कठोर शत्रुता प्रदर्शित की थी, जिनसे अब वह सुरक्षा चाह रहा था। परन्तु सूरजमल ने अपने हृदय की विशालता का परिचय दिया। दुर्ग के बाहर आकर जाट राजा ने शरणागत का उसकी पद की गरिमा के अनुसार सम्मान और स्वागत किया तथा भरतपुर के श्रेष्ठ महलों में उसकी सुविधानुसार रहने की व्यवस्था की।''[24]

दत्ताजी सिन्धिया पर आई विपत्ति के समय मल्हारराव होल्कर मुकन्दरा (सवाई माधोपुर के निकट) में रूका हुआ था। 27 दिसम्बर, 1759 ई0 को उसे अप्रत्याशित रूप से दत्ता जी सिन्धिया का घबराहट भरा पत्र मिला, जिसमें अब्दाली के विरूद्ध युद्ध करने के लिए उसे तुरन्त बुलाया गया था। फलस्वरूप पाँच दिन बाद ही उसने दिल्ली के लिए कूच कर दिया था। किन्तु उसके लिए बरारीघाट के युद्ध में इतना जल्दी सम्मिलित होना सम्भव नहीं था। वह शीघ्रता से सूरजमल जाट के पास पहुँचा और उससे आग्रह किया कि दुर्रानी शाह से युद्ध करने में वह उसका साथ दें। जाट राजा ने उत्तर दिया, ''मैं अपने राज्य से बाहर निकलकर उससे लड़ाई नहीं लड़ सकता, क्योंकि मेरे पास जमकर लड़ाई करने का साधन नहीं है। यदि शत्रु यहाँ आक्रमण करेगा, तो मैं अपने दुर्गों में शरण ले सकूगाँ।''[25]

15 जनवरी, 1760 ई0 कोटपुतली में मल्हाराव होल्कर जनकोजी से आकर मिल गया। कुछ दिन वहाँ रूकने के बाद चम्बल पार करके दक्षिण जाने का विचार करके 23 तारीख को मराठा लश्कर कोटपुतली रवाना हुआ। एक दिन अचानक सूरजमल का ऊँट सवार भागता हुआ सिन्धिया के पास यह सन्देश लाया कि, ''दुर्रानी की फौज दिल्ली के निकट यमुना पार कर, अन्तर्वेद

प्रान्त से होकर आपकी ओर आ रही हैं अतः आप इस ऊँट सवार को देखते ही अपना स्थान छोड़ देना।'' आगरा के निकट पहुँचने पर मराठों को शीघ्र यमुना पार करने की चिन्ता सताने लगी। मल्हारराव होल्कर स्वयं भी घबरा गया और उसने रूपराम कटारी को बुलाकर कहा, ''बाबा (जनकोजी) जख्मी है, उसे पार करने में मदद करो, ऐसा कठिन समय शत्रु पर भी न आवे।'' मल्हार के मुँह से ये शब्द सुनकर रूपराम ने भी मर्यादा तोड़कर कहा, ''डोकरे (बूढ़े) रोता क्यों है? तुम्हारी जान से पहले हमारी जान है, 'चिन्ता न करें'। यह कहकर रूपराम कटारी ने दो नावें मंगवाई और तम्बू के पास खूँटी से बाँध दी। पहले दोनों महत्वपूर्ण व्यक्तियों को सुरक्षित आगरा किले में पहुँचाकर रातों रात फौज को नदी पार करवाया।[26]

यहाँ पर मल्हारराव होल्कर ने अपनी सेना के अलावा मराठा लश्कर को आगे भेज दिया जिसने 3 फरवरी को चम्बल पार किया। बापू हिंगणें, नाना साहब, गणपतराव आदि कुछ मराठा सरदार सुरक्षा के लिए डीग दुर्ग में चले गये। इस समय अब्दाली द्वारा अपना पीछा किये जाने के समाचार से भयभीत होकर मल्हार होल्कर अपनी 20,000 फौज के साथ जाट प्रदेश में डीग से 34 मील दूर एक स्थान पर पहुँच गया। बापू हिंगणें जो डीग में शरण पाने के पूर्व तक इस सेना के साथ था, इस सेना की दशा के बारे में एक फरवरी 1760 ई0 को लिखता है, ''कहने को तो होल्कर के पास 20,000 फौज है, किन्तु वह बेंत की तरह काँप रही है। इसमें केवल आठ–दस हजार फौज अच्छी है, किन्तु वह भी डरी हुई है। ऐसा दिखाई नहीं देता है कि वह अहमदशाह अब्दाली के सामने जाकर लड़ने की हिम्मत करेगी।''[27] यह फौज जिधर भागती

है उसी तरह वह (अहमदशाह अब्दाली) भी आ रहा है। उसको तो यह धुन लगी हुई है कि इनको पीटकर चम्बल पार खदेड़ दिया जाए।

इस बीच अहमदशाह अब्दाली बेरोकटोक राजधानी पर अधिकार करके, याकूब खान को उसका नियन्त्रण सौंपकर 14 जनवरी, 1760 ई0 को खिज्राबाद पहुँच गया। यहाँ से उसने जाट राजा सूरजमल और राजपूत शासकों को पत्र लिखे कि वे उसके सम्मुख उपस्थित होकर नजराना पेश करें। पेशवा को लिखे गये राजा केशव राव के एक पत्र से पता चलता है कि उत्तर के हिन्दू शासक जहाँ एक ओर मराठा लूटेरों से परेशान थे, वहीं वे अब्दाली की शक्ति से आतंकित उसका विश्वास करने की मनःस्थिति में भी नहीं थे अत्यधिक धन की माँग के कारण भयभीत शुजाउद्दौला भी अब्दाली के पास जाने को तैयार नहीं था। अब्दाली का पत्र आने पर सूरजमल ने दूरदर्शितापूर्वक इस बार भी प्रतीक्षा करने की नीति अपनाई कि मल्हारराव होल्कर अहमदशाह अब्दाली आपस में क्या फैसला करते है, साथ ही आवश्यकता पड़ने पर सुरक्षात्मक युद्ध के लिए उसने अपने चारों दुर्गों सहित आगरा व अलीगढ़ के किलों में भी अच्छा बन्दोबस्त कर लिया।[28] तब उसने स्पष्ट किन्तु चातुर्यपूर्ण निम्नलिखित उत्तर भेजा, ''आप पहले मराठों को दिल्ली से निकालकर हमको आश्वासन दे कि आप का वहाँ पर पूर्ण अधिकार हो गया है, तब मैं इस मामले में आवश्यकतानुसार पैसा दूँगा, उसके पहले मैं कुछ नहीं कर सकता।''[29]

स्वाभिमानी सूरजमल जाट से सन्तोषजनक उत्तर न पाने व नजीबुद्दौला की सलाह पर अहमदशाह अब्दाली ने जाटों को दण्डित करने और नजराना राशि की वसूली के लिए 27 जनवरी को खिज्राबाद छोड़ दिया, और शेरगढ़ के

रास्ते से जाट प्रदेश की ओर कूच किया। 6 फरवरी को डीग पहुँचकर उसने दुर्ग पर आक्रमण कर दिया। किन्तु यह आक्रमण उसने पूरी तत्परता से नहीं किया गया। ऐसा प्रतीत होता है कि अहमदशाह अब्दाली का उद्देश्य जाटों पर मराठों से मिलने से रोकने हेतु दबाब डालने तक ही सीमित था। यहाँ से उसने अपनी सैनिक टुकड़ियों को मराठों का पीछा करने हेतु रवाना किया और स्वयं भी डीग का घेरा उठाकर मल्हारराव होल्कर पर आक्रमण करने के उद्देश्य से 15 फरवरी को मेवात एवं 18 फरवरी को रेवाड़ी की तरफ चला गया। रास्ते में प्रतिरोध प्रदर्शित करने पर अहमदशाह अब्दाली ने महुआ गाँव के निवासियों का कत्ल कर डाला और बसवा के निवासियों को धन देने पर छोड़ा गया। कुछ दिन तक मराठों व अफगान में छिपाटोली संघर्ष चलता रहा। अन्ततः 4 मार्च को जहान खाँ ने सिकंदराबाद के निकट मल्हारराव होल्कर पर आकस्मिक आक्रमण कर उसे बुरी तरह से पराजित कर दिया। मल्हारराव होल्कर भागकर आगरा पहुँचा और उसका दीवान गंगाधर मथुरा पहुँचा।[30]

अहमदशाह अब्दाली ने रामगढ़ पर भी कब्जा कर लिया और उसका नाम अलीगढ़ रख दिया। अलीगढ़ पर सूरजमल का अधिकार था अब अहमदशाह अब्दाली ने सूरजमल से दो करोड़ रूपये की मांग की तथा डीग पर आक्रमण करने की धमकी दी। सूरजमल 4.5 लाख रूपये देने का वादा किया पर वास्तव में वह एक पाई भी देना नहीं चाहता था। मल्हारराव होल्कर दोआब से लौटते समय सूरजमल से मिला और दोनों की मैत्री वार्ता से अहमदशाह अब्दाली को नजराना देने की बात खटाई में पड़ गई। दत्ताजी सिन्धिया की मृत्यु सूचना से पेशवा ने दक्षिण से एक विशाल सेना सदाशिवराव

भाऊ के नेतृत्व में भेजी। सूरजमल की स्थिति को समझते हुए पेशवा ने भाऊ को हिदायत दी थी कि वह उसके प्रदेश में छेड़खानी नहीं करें तथा न ही 1754 ई0 की तय अवशेष राशि के लिए ही दबाब डाले।[31] पेशवा अहमदशाह अब्दाली को हटाने के लिए राजा सूरजमल से मैत्री व उसकी सहायता को मराठों के लिए आवश्यक मानता था। सदाशिवराव भाऊ दक्षिण से जब धौलपुर के समीप पहुँचा तो उसने राजा सूरजमल को पत्र लिखा इन पत्रों में मैत्री की बात लिखी गई थी तथा अत्यन्त अलंकारिक भाषा में सूरजमल की सराहना की गई थी।[32] सूरजमल स्वयं यह चाहता था कि उसके प्रदेश को कोई हानि न हो। उसने सदाशिवराव भाऊ की बातों का स्वागत किया तथा गम्भीर नदी के उत्तरी किनारे पर पहुँचकर उसने अपने शिविर लगाये। सदाशिवराव भाऊ से सूरजमल को मिलने में संकोच व भय दोनों था कि कहीं वह उसे बंदी न कर ले। यह स्पष्ट नहीं है कि मैत्री पत्रों के उपरान्त भी सूरजमल क्यों भयभीत था। मल्हारराव होल्कर और सिन्धिया ने उसे विश्वास दिलाया कि उसे इस प्रकार भयभीत होने की जरूरत नहीं है। उन दोनों के साथ सूरजमल सदाशिवराव भाऊ के दरबार में पहुँचा। सदाशिवराव भाऊ ने सूरजमल का पूरा स्वागत किया और मैत्री के प्रमाणस्वरूप आपस में पगड़ी बदली।[33] वे वहाँ से आगरा पहुँचे और आगरा पहुँचने पर सदाशिवराव भाऊ ने मल्हारराव और सूरजमल के साथ जमुना का निरीक्षण किया और पानी की गहराई देखकर उसने पुरानी योजना छोड़ने का निर्णय किया जिसके अनुसार नदी को पारकर दोआब में गोविन्द वल्लाल के पास शक्तिशाली सेना भेजने का निश्चय किया गया था। सदाशिवराव भाऊ ने जाटों को अपने थाने स्थापित करने की पूरी स्वतन्त्रता दे रखी थी और इस सम्बन्ध में गोविन्द वल्लाल को भी आवश्यक

निर्देश दे दिए थे। गहरे पानी के बावजूद दो–तीन हजार जाट सेना जमुना पार कर दोआब में पहुँच गई, किन्तु एक भी मराठा सवार जाटों का अनुसरण करके गोविन्द वल्लाल की सहायतार्थ नहीं पहुँच सका। जमुना की बाढ़ के कारण सदाशिवराव भाऊ ने तुरन्त दिल्ली की और प्रस्थान करने का निश्चय किया।

अहमदशाह अब्दाली के विरूद्ध सैनिक रणनीति तय करने के लिए सदाशिवराव भाऊ ने आगरा में ही मराठा सरदारों की युद्ध परिषद की बैठक बुलाई, जिसमें जाट राजा सूरजमल को भी आमंत्रित किया गया। स्वभाव एवं विचारों की भिन्नता के कारण सदाशिवराव भाऊ व सूरजमल में मतभेद होना अनिवार्य था। जहाँ दम्भी व हठी सदाशिवराव भाऊ सूरजमल को एक साधारण जमींदार समझता था और होल्कर के साथ उसकी मित्रता को सन्देह एवं ईर्ष्या की दृष्टि से देखता था, वहीं सूरजमल और मल्हारराव होल्कर को इस बात का अभिमान था कि उत्तर के सैनिक युद्धों की रणनीति में वे अधिक कुशल एवं अनुभवी हैं, तथा सदाशिवराव भाऊ इस मामले में नया है, अतः युद्ध संचालन की बागडोर उन्हें सौंप दी जानी चाहिए। यही कारण था कि सदाशिवराव भाऊ ने जाट शक्ति के महत्व का सही मूल्यांकन नहीं किया और सूरजमल के ठोस एवं व्यवहारिक सुझावों के प्रति भी दुराग्रह अपनाया।[34]

युद्ध परिषद की बैठक में जब सदाशिवराव भाऊ ने सूरजमल से अपनी सम्मति को प्रकट करने को कहा, तो उसने कहा, ''यद्यपि मैं एक साधारण जमींदार हूँ और आप एक बड़े राजकुमार, फिर भी प्रत्येक व्यक्ति अपनी क्षमता के अनुसार योजनाएँ बनाता है। यह एक महान शासक के विरूद्ध युद्ध है,

जिसका समर्थन इस्लाम के सभी मुखिया कर रहे हैं। यद्यपि हिन्दुस्तान में शाह प्रवासी है, किन्तु उसके सारे अनुयायी इस देश के निवासी और बड़ी जमींदारियों के स्वामी हैं। अगर आप चतुर हैं, तो शत्रु चतुरतम है निःसन्देह यह उचित होगा कि आप इस युद्ध का संचालन बहुत सावधानी से करें। आपके अनुमान के अनुसार अगर विजय समीर गाय की पूँछ पर बह रही है, तो यह माना जायगा कि वह आपके भाग्यशाली ललाट पर नियति की कलम से लिखी हुई थी। परन्तु युद्ध अवसरों का खेल है, जिसके दोनों पहलू होते हैं। विद्वतापूर्ण यह है कि न तो अत्यधिक विश्वास में रहा जाय और नहीं अत्यधिक आराम में। उचित तो यह दिखाई देता है कि आप अपने स्त्री–बच्चों, आवश्यकता से अधिक असबाब एवं बड़ी तोपें चम्बल के पार झाँसी या ग्वालियर के किले में भेज दे और आप लोग हल्के अस्त्र–शस्त्रों से सुसज्जित होकर शाह का मुकाबला करें। विजयश्री हमें प्राप्त होती हैं, तो हमारे हाथ लूट का अत्यधिक माल आएगा। विपरीत परिणाम की स्थिति में हम परिवार तथा भारी सामान की चिन्ता से मुक्त होकर सफलतापूर्वक भाग सकेंगे। यदि इन्हें इतनी दूर भेजने के विचार को आप अव्यवहारिक समझकर विरोध करते है, तो मैं अपने चार अजेय दुर्गों में से कोई भी एक खाली करने को तैयार हूँ, जहाँ आप अपनी स्त्रियों एवं सामान को सुरक्षित छोड़ दें और सारी सुविधाएँ जुटा सके, ताकि संघर्ष के निर्णायक क्षण में अपनी स्त्रियों की मान रक्षा के बारे में चिन्ता से आपका दिल भारी न हो और हाथ न काँपे। अकाल की स्थिति में अनाज की रसद के लिए मार्ग अवश्य खुले रहने चाहिए, जिससे अन्न की कमी के कारण सेना कठिनाई में न पड़े। अपनी सेना के साथ आपके निर्देश का मैं इन्तजार करूँगा और चूंकि मेरा प्रदेश शत्रु की लूटमार से मुक्त होगा, इसलिए

वहाँ से रसद आसानी से प्राप्त हो सकेंगी। शाह के विरूद्ध राजाओं की भाँति आमने–सामने युद्ध लड़ने की अपेक्षा हल्की घुड़सवार सेना के साथ कज्जक (गुरिल्ला) युद्ध किया जाय। वर्षा ऋतु आने पर दोनों पक्ष अपने–अपने स्थानों से हट नहीं सकेंगे और अन्त में शाह जो हमारी तुलना में अलाभदायक स्थिति में होगा, निराश होकर अपने प्रदेश को लौट जाएगा। इस प्रकार निराश अफगान आपको समर्पण कर देगा।[35] जाट राजा सूरजमल ने सदाशिवराव भाऊ को यह सलाह भी दी कि सेना का एक डिवीजन पूर्व में तथा दूसरा लाहौर की ओर भेजा जाय, जो उन प्रदेशों पर आक्रमण करके दुर्रानी सेना को भेजी जाने वाली अनाज की रसद को काट दें।[36]

काशीराज लिखता है कि मल्हारराव होल्कर सहित मराठा सरदारों ने इस सलाह से सहमति व्यक्त करते हुए कहा, "तोपखाने की गाड़ियाँ शाही सेनाओं के लिए उपयुक्त हैं किन्तु युद्ध का मराठा तरीका लूटमार का है, और उनके लिए श्रेष्ठ मार्ग यही है कि वे उस तरीके का अनुसरण करें जिसके वे अभ्यस्त रहे हैं। हिन्दुस्तान पर उनका वंशानुगत अधिकार नहीं रहा है और अगर वे उस पर नियन्त्रण करने में सफल नहीं होते है तो उनके लिए पुनः पीछे हटना अपयशकारी नहीं होगा। अतः सूरजमल की सलाह सर्वश्रेष्ठ हैं और उसके द्वारा सुझाई गई योजना निश्चित रूप से शत्रु को पीछे हटने के लिए मजबूर करेगी, क्योंकि इस देश में उनका कोई निश्चित अधिकार नहीं है। इसलिए वर्तमान में उनका उद्देश्य वर्षा शुरू होने तक समय निकालने का होना चाहिए तब तक दुर्रानी निश्चित रूप से अपने प्रदेश को लौट जायेगा।[37]

सारे मराठा सरदारों की सर्वसम्मति के बावजूद सदाशिवराव भाऊ को, जिसे अपनी सैनिक शक्ति एवं निजी योग्यता पर अत्यधिक विश्वास था, उसने इस सलाह पर ध्यान नहीं दिया। उसने अपने जैसे राजकुमार के लिए जो पेशवा का भाई था, गुरिल्ला युद्ध अपनी प्रतिष्ठा के विरूद्ध समझा। सदाशिवराव भाऊ ने जबाब दिया कि, ''उससे निम्न लोगों ने इस देश में सैनिक प्रतिष्ठा अर्जित की थीं, और उसके लिए, जो कि उच्च था, यह शिकायत कभी नहीं रहनी चाहिए कि रक्षात्मक युद्ध करते हुए उसने अपयश के अलावा कुछ नहीं पाया।'' सदाशिवराव भाऊ ने होल्कर की समझ एवं कार्यों की भर्त्सना करते हुए जाट राजा के बारे में कहा कि, ''सूरजमल सिर्फ एक जमींदार है और उसकी सलाह उसके पद एवं क्षमता के अनुरूप ठीक है, किन्तु उस जैसे सर्वोच्च व्यक्ति के विचारार्थ मूल्यवान नहीं है।''[38]

काशीराज आगे लिखता है कि अनुभवी एवं बुद्धिमान लोगों को इस व्यक्ति (भाऊ) में हठ एवं अहंकार को देखकर आश्चर्य हुआ, जिसने पूर्व में हमेशा बहुत सर्तकता एवं विवेक प्रदर्शित किया था, जैसा कि भाऊ ने इस अभियान तक किया था और यह निष्कर्ष निकाला कि भाग्य ने उनके कार्य की विफलता निश्चित कर दी है। प्रत्येक व्यक्ति उसके उग्र एवं कटु भाषणों में से विरक्त हो गया था और वे आपस में कहने लगे कि यह अच्छा है कि यह ब्राह्मण एक बार पराजय का सामना करें, चाहे कोई भी प्रतिफल हमें स्वीकार करना पड़े।[39]

अहमदशाह अब्दाली के विरूद्ध पानीपत के युद्ध में सदाशिवराव भाऊ अकेला रह गया है, उसके साथ एक भी गैर मराठा राजा या जागीरदार नहीं

था। युद्ध में मराठा सेना परास्त हो गई तथा सदाशिराव भाऊ भी युद्ध में मारा गया। यद्यपि इस विनाशकारी युद्ध में राजा सूरजमल तटस्थ रहा परन्तु युद्ध के पश्चात् पराजित मराठा सेना को शरण सूरजमल के राज्य में ही मिली।

सूरजमल और रानी किशोरी ने प्रेम एवं उत्साह से मराठों को अपने राज्य में ठहराया उनका इलाज कराया, भोजन–पानी की व्यवस्था की और जब वे जाने को हुए तो एक रूपया नकद एक सेर अनाज और कपड़े देकर भेजा गया ग्वालियर जाने तक की हर सुविधा देने का प्रयास किया गया। ग्रांट डफ ने मराठा शरणार्थियों के साथ सूरजमल के व्यवहार के विषय में लिखा है जो भी भगोड़े उसके राज्य में आये, उनके साथ सूरजमल ने अत्यन्त दयालुता का बरताव किया। मराठे उस अवसर पर किये गये जाटों के व्यवहार को आज भी कृतज्ञता तथा आदर के साथ याद करते हैं।[40] फ्रैंकलिन लिखता है कि नारोशंकर मराठा को सूरजमल ने लूटा। परन्तु नारोशंकर के एक साथी का विवरण इसे झुठलाता है। उसने लिखा है कि नारोशंकर और बालाजी पालेन्दे तीन चार घुड़सवारों के साथ दिल्ली से भागे। मार्ग में मल्हारराव होल्कर 8–10 घुड़सवारों के साथ उन्हें मिला। हम होल्कर के साथ ग्वालियर में ठहरे हैं भरतपुर के राजा सूरजमल ने हमारी सुरक्षा और सुविधा में कोई कसर नहीं छोड़ी। सदाशिवराव भाऊ को सपत्नीक तथा बालाजी राव शमशेर बहादुर को राजा सूरजमल तथा उसकी पत्नी रानी किशोरी ने सांत्वना दी और दक्षिण में जाने के लिए सुविधा प्रदान की। शमशेर बहादुर जो घायल हो गया था डीग में उसकी मृत्यु हुई। सूरजमल ने डीग में उसकी छतरी बनवाई। सदाशिवराव भाऊ के शिविर से बचे लगभग 50000 पुरूष और स्त्रियों के खाने–पीने का

प्रबन्ध सूरजमल द्वारा किया गया था। नाना फड़नवीस ने एक पत्र में लिखा था कि सूरजमल के व्यवहार से पेशवा के चित्त को बड़ी सांत्वना मिली। वैण्डल ने लिखा है कि जाटों के मन में मराठों के प्रति इतनी दया थी कि उन्होंने सहायता की, यह तब जब कि उनकी शक्ति सचमुच इतनी थी कि यदि सूरजमल चाहता तो एक भी मराठा लौटकर दक्षिण नहीं जा सकता था।[41] यद्यपि मराठों से इस प्रकार के अच्छे व्यवहार से अहमदशाह अब्दाली को कष्ट हुआ और वह सूरजमल पर आक्रमण करने की योजना बनाने लगा परन्तु युद्ध को अनावश्यक मानते हुए सूरजमल ने अब्दाली के दूत को एक लाख रूपये देकर अब्दाली को शान्त कर दिया। 22 मई 1761 को अहमदशाह अब्दाली वापस लौट गया।

सूरजमल के मृत्यु के बाद जवाहर सिंह को भरतपुर जाट राज्य का उत्तराधिकार प्राप्त हुआ। जवाहर सिंह के राज्यारोहण के आरम्भिक दिनों में जाट मराठा सहयोग आरम्भ हो गया। जिसका कारण रूहेला सरदार नजीबुद्दौला से अपने पिता सूरजमल जाट की मृत्यु का बदला लेना था। इस सहयोग सम्बन्ध का आधार आर्थिक था। मल्हारराव होल्कर 24 लाख रूपये के बदले नजीबुद्दौला के विरूद्ध सहायता को तैयार हो गया था। नजीबुद्दौला के खिलाफ जवाहर सिंह ने सिखों से भी सन्धि की। आवश्यक धन देकर जवाहर सिंह ने 25 हजार सिक्ख सेना को भी अपनी सहायतार्थ आमंत्रित किया। मल्हारराव होल्कर को जाटों से न मिलने के लिए भी नजीबुद्दौला ने भरसक प्रयास किया। उसने मल्हारराव होल्कर को लिखा कि, ''हम दोनों में पुरानी मैत्री है। मैंने आपकी पानीपत के युद्ध में सहायता की थी।[42] किन्तु मराठों ने

नजीबुद्दौला का पक्ष ग्रहण नहीं किया। ऐसी स्थिति में नजीबुद्दौला ने जवाहरसिंह की क्रोधाग्नि को भी अनेक प्रकार से शान्त करने का प्रयास किया। उसने जवाहरसिंह को लिखा कि, ''जो कुछ होना था सो हो गया। अब यदि युद्ध करने से ही आपके पिता सूरजमल पुनः जीवित हो सकते हों तो आप अवश्य ही मुझसे युद्ध करें। मैंने आपके राज्य के किसी भी भाग पर अधिकार नहीं किया, फिर आप व्यर्थ में ही मुझसे लड़ाई मोल लेते हैं। विजय पराजय तो भगवान के हाथ में हैं।[43] लेकिन अपने प्रतापी पिता के घातक को दण्ड देना, जवाहरसिंह व समस्त जाट जाति के लिए आत्म समान एवं प्रतिष्ठा का प्रश्न बन चुका था। अतः नजीबुद्दौला के ये सारे प्रयास निष्फल ही रहे। और स्वभाव से क्रोधी जवाहरसिंह ने अक्टूबर, 1764 ई0 के अन्त में 60 हजार सेना व 100 बंदूके अपने साथ लेकर रूहेला सरदार नजीबुद्दौला के विरूद्ध युद्ध अभियान आरम्भ कर दिया।

मराठा सरदार मल्हारराव होल्कर और उसके साथ 20 हजार मराठा सैनिक तथा पच्चीस हजार सिक्ख सैनिक भी युद्ध के समय उसके साथ आ मिलने वाले थे। दिल्ली के सामने पहुँच कर अपनी सेना को अपनी सहायक मराठा सेना की प्रतीक्षा में जवाहरसिंह ने रोके रखा। जब उसका मराठा साथी मल्हारराव होल्कर आ पहुँचा, तब पुराने किले के पूर्व की ओर जमुना के तट पर उसने अपना डेरा लगाया। नजीबुद्दौला ने युद्ध की तैयारी आरम्भ कर दी उसने बुलन्द बाग में शाही किले के नीचे ठहरकर ऐसी व्यवस्था की जिससे युद्ध काल में दोआब के इलाके से समय पर खाद्य सामग्री आती रहे। इसके साथ ही उसके सैनिक यमुना नदी के पास रहने लगे। उन्होंने एक गहरी खाई

खोदकर उसके पीछे एक मिट्टी की दीवार बनाई और उस पर तोपें जमा दी। उधर जवाहरसिंह ने अपनी तैयारी पूर्ण कर नजीबुद्दौला को चुनौती दी कि इस प्रकार किले में छिपे रहने से भी उसके प्राण नहीं बच सकेंगे। नजीबुद्दौला इस चुनौती को स्वीकार करते हुए सेना सहित दिल्ली के किले से बाहर निकला। इस प्रकार नवम्बर 25, 1764 ई0 को जवाहरसिंह व नजीबुद्दौला में युद्ध प्रारम्भ हुआ। दोनों पक्षों में जमकर भीषण लड़ाई हुई। अन्त में जाट शक्ति के सामने नजीबुद्दौला की सेना के पैर उखड़ गये और पराजित रूहेला सरदार अपनी सेना के साथ वापस किले में जा पहुँचा। इस युद्ध में दोनों पक्षों के एक–एक हजार सैनिक मारे गये।[44]

रूहेलों की इस पराजय से उत्साहित हो जवाहरसिंह ने शाहदरा को लूटा, फिरोजशाह के किले तक आगे बढ़ा और रूहेलों की खाईयों के सामने आ डटा। तब अपने मराठा साथी मल्हारराव होल्कर से आग्रह किया कि वह उन पर आक्रमण करने में सहायता दे। मल्हारराव होल्कर अपनी सेना के साथ निकला परन्तु जवाहरसिंह की सेना से बहुत पीछे शेरशाह के किले के पास ही ठहरा रहा। जवाहरसिंह ने मल्हारराव होल्कर से बार–बार आगे बढ़ कर हमला करने की प्रार्थना की, परन्तु उसने सुनी–अनुसनी कर दी और यह कहता रहा कि जब तक पुराने किले में से सब रूहेलों को न निकाल दिया जाय तब तक आगे बढ़ना उचित नहीं है। उस दिन दोनों ओर से केवल गोलियाँ चलती रहीं और यदा–कदा कुछ झड़पें भी हुई, परन्तु जम कर युद्ध नहीं हुआ। जवाहरसिंह को पता चला कि दिल्ली के दक्षिण में नजीबुद्दौला ने खाईयाँ

खुदवा रखी है, जिनके कारण नगर के निकट नहीं पहुँचा जा सकता, उसने अपनी युद्ध योजना बदल दी।[45]

नवम्बर 16, 1764 ई0 को प्रातःकाल उसने बलराम व अपने गुरू रामकृष्ण महन्त तथा जोधपुर के ब्राह्मण सवाईराम को उसके साथ एक सौ पचास राठौड़ सैनिक सहित और अपने आठ हजार जाट घुड़सवारों को अमली घाट के पास जमुना पार के लिए भेजा उन्हें यह निर्देश दिया गया कि पश्चिमी तट पर तैनात रूहेले सैनिकों को वहा से भगा दे और इसके पश्चात् नाव के पुल पर आक्रमण किया जाए। परन्तु जाट सवार रास्ते में ठहर कर पटपरगंज की अनाज की सम्पन्न मण्डी को लूटने में लग गये।[46] इस प्रकार उन्होंने बहुमूल्य समय नष्ट कर दिया।

18 नवम्बर, 1764 ई0 को जवाहरसिंह अपने मराठा सहयोगियों तथा समस्त आक्रमणकारी सेना के साथ जमुना को पार करके पूर्वी किनारे पर जा पहुँचा। वहाँ उसने नदी के किनारे पर तोपें जमा दी तथा नदी पार से ही दिल्ली पर गोले बरसाने शुरू कर दिये, इस गोलाबारी से राजधानी के पूर्वी भाग को अत्यधिक नुकसान पहुँचा गोलाबारी इतनी भीषण तथा सटीक थी की एक दिन बाद ही नजीबुद्दौला के सिपाहियों ने जमुना नदी के किनारे की रेत की खाईयों से हटकर नगर के अन्दर मकानों में शरण ली और नजीबुद्दौला को बुलन्द बाग में फर्श खोद कर नीचे एक सुरक्षित कमरा बनवाना पड़ा। इसके बाद भी जाट तोपों के गोलों से नगर के अन्दर अनेक व्यक्ति मारे गये और बहुत घायल हो गये।[47]

जवाहरसिंह की सेना के द्वारा यह गोला–बारी पन्द्रह दिनों तक चलती रही और तोपों की इस गोला–बारी से समस्त दिल्ली में हा–हाकार मच गया। नगर में जनसाधारण लोगों का घरों से बाहर निकलना बन्द हो गया। वे भूखे मरने लगे। नजीबुद्दौला की प्रमुख सेना भी भूख से व्याकुल हो गयी। इसके बाद भी उसने आत्म–समर्पण नहीं किया। इसी दौरान सिक्खों के साथ बहुत समय से जवाहरसिंह की जो बातचीत चल रही थी वह पूरी हो गई और सिक्ख सेना ने जाट राजा जवाहरसिंह का साथ देने का वायदा किया। अब युद्ध की नई रणनीति बनाई गई जिसके अनुसार सिक्ख सेना के एक भाग ने दिल्ली नगर से कोई 14 मील दूर स्थित बरारी घाट पर मोर्चा संभाला और उधर जाट सेना दिल्ली के सामने पूर्वी तट पर आ खड़ी हुई। मराठा सेना भी उसी घाट पर राजधानी के उत्तर में रखी गई। सिक्ख सैनिकों का दूसरा भाग पश्चिमी घाट पर राजधानी के उत्तर और पश्चिमी की ओर जम गया। सिक्ख सैनिकों को यह आदेश दिया गया कि वे उत्तरी तथा पश्चिमी क्षेत्रों से खाद्य सामग्री न आने दें। इस प्रकार नजीबुद्दौला की सेना को तीनों ओर से घेर लिया गया। अब उसके लिए दक्षिण का मार्ग ही खुला था किन्तु इस मार्ग पर स्थित बल्लभगढ़ का दुर्ग जाटों के अधीन था। इस मोर्चाबन्दी से दिल्ली में खाद्य सामग्री पहुँचने के समस्त मार्ग अवरूद्ध हो गये। अफगान सैनिकों ने इस घेरे को तोड़ने के अनेक प्रयास किये किन्तु उन्हें असफलता ही हाथ लगी।

15 जनवरी, 1765 ई0 को सब्जी मण्डी के निकट पहाड़ी पर एक भीषण लड़ाई नजीबुद्दौला और सिक्खों की सेनाओं के बीच हुई, इस लड़ाई में जाटों ने सिक्खों को पूरी सहायता दी थी। इस युद्ध में दोनों पक्षों के अनेक सैनिक आहत हुए व मारे गये। लेकिन इस युद्ध का भी परिणाम पूर्व की भाँति अनिर्णित ही रहा। इसके कुछ समय बाद कोई दस सहस्त्र नागा संन्यासी

अवध से वहाँ आ पहुँचे जिन्हें जवाहरसिंह ने उमरावगिर गुसाँई व हिम्मतगिर गुसाँई के द्वारा अपनी सेना में रख लिया गया। एक दिन नदी पार कर जाट सेना के साथ, ये भी दिल्ली नगर के दक्षिण में स्थित बाहरी मौहल्लों तक जा पहुँचे और उन्होंने रूहेलों के साथ जमकर युद्ध किया, किन्तु इन्हें भी पीछे हटना पड़ा।

इस प्रकार फरवरी के प्रथम सप्ताह तक प्रतिदिन लगातार युद्ध होता रहा। परन्तु खाद्य–सामग्री का आना सिक्ख सेना ने बिल्कुल ही बन्द कर दिया था। मराठों ने भी उसके चारों और घेरा डाल रखा था। अब इस नगर में अन्न का अभाव चरम सीमा पर पहुँच गया। अब उनके सामने भुखमरी अथवा आत्मसमर्पण के अतिरिक्त और कोई दूसरा विकल्प शेष नहीं था, दुकानें बन्द हो गई और सरकार के अधिकतम प्रबोधन के होते हुए भी लोगों को दिलासा नहीं मिली। अगले ही दिन पुराने और नए शहर के लोग जाट–खेमें में पहुँच गये और वे भुखमरी से बचने के लिए अनाज की भीख माँगने लगें।[48] यह नगर का एक प्रकार का समर्पण था क्योंकि किसी भी स्रोत से सहायता के आने की कोई सम्भावना नहीं थी, सिक्ख सहारनपुर तथा नजीबुद्दौला के अन्य इलाकों में लूटमार मचाये हुए थे, तथा अहमदशाह अब्दाली के आने की कोई सूरत दिखाई नहीं पड़ रही थी।[49]

इन विनाशकारी परिस्थितियों में रूहेला सरदारों ने आक्रमण करने व अपने हाथ में तलवार लेकर मरने की इजाजत नजीबुद्दौला से मांगी। किन्तु नजीबुद्दौला ने साहस नहीं खोया, क्योंकि वह इस तथ्य से अवगत था कि दिल्ली के अंदर जवाहर सिंह के उतने शत्रु नहीं है जितने कि उसके अपने शिविर में हैं। अतः वह दृढ़तापुर्वक डटा रहा और सन्धि वार्ता के लिए प्रयास

करता रहा। अन्ततः सन्धि के लिए किए गए उसके प्रयासों को सफलता मिली। फरवरी 4, 1765 ई0 को नजीबुद्दौला ने सुजान मित्र, राजा चेतराम और रूपराम कटारी का भतीजा मल्हारराव होल्कर से शान्ति के सम्बन्ध में बात करने गये और लौट आये। सूर्यास्त से पूर्व नबाब जबीता खाँ ने जमुना को पार किया और गंगाधर तातियाँ तथा रूपराम कटारी को रूहेला सरदार नजीबुद्दौला के पास ले आया। तब दोनों पक्षों ने स्पष्टतः एक समझौता स्वीकार कर लिया। फरवरी 9, 1765 ई0 नजीबुद्दौला अपने मुख्य सरदारों के साथ मल्हारराव होल्कर के शिविर में गया और उसके पश्चात् मल्हारराव होल्कर को साथ लेकर जाट राजा जवाहरसिंह के शिविर में पहुँचा। इस प्रकार जवाहरसिंह से भेंट कर वह सूर्यास्त से पूर्व ही अपने शिविर में लौट आया और अपने साथ वहाँ से भारी मात्रा में खाद्यान्न भी लेता आया।[50] इस समझौते के तहत जवाहरसिंह को लगभग विजित दिल्ली का घेरा उठाने के लिए विवश होना पड़ा।

नजीबुद्दौला का साथ दिये जाने के कारण जवाहरसिंह ने मल्हारराव होल्कर को समझौते की राशि नहीं दी जिसके कारण मल्हारराव होल्कर ने नाहरसिंह के समर्थन में अपनी सेना चम्बल पार भेज दी। नाहरसिंह की सेना से मिलकर धौलपुर दुर्ग की रक्षा में लग गयी। महाराजा जवाहरसिंह शीघ्र अवसर देखकर अपने सिक्ख सैनिकों के साथ चम्बल के किनारे पहुँचा। यहाँ मराठा सेना का एक भाग जो कि जाट क्षेत्र में घुस आया था उसे गिरफ्तार कर लिया गया। महाराजा जवाहरसिंह ने जब धौलपुर पर आक्रमण किया तो नाहरसिंह व उसकी मराठा सेना उसका सामना नहीं कर सकी तथा विजय श्री

ने महाराज जवाहरसिंह का साथ दिया। इस स्थिति में गोहद का जाट राणा भी अपनी सेना लेकर जवाहरसिंह के साथ आ मिला।

दोनों की संयुक्त सेनाओं ने मिलकर मल्हारराव होल्कर के विरूद्ध युद्ध करने की योजना बनायी तथा उत्तर मालवा में मराठों के क्षेत्रों तक लूटमार करना आरम्भ किया। उन्हें शीघ्र ही वापस अपने राज्य को लौट जाना पड़ा, क्योंकि जवाहरसिंह की सहायतार्थ आये सिक्ख सैनिकों ने उसके साथ आगे आने से इन्कार कर दिया और इस तृणहीन तथा जलहीन मैदान की गर्मी उनके लिए असहनीय थी। अतः विवश होकर जवाहरसिंह को मल्हारराव होल्कर के विरूद्ध अपनी युद्ध योजना स्थगित कर देनी पड़ी।[51] किन्तु चम्बल से रावी नदी तक के समूचे उत्तर भारत में एक जाट–संघ के निर्माण का ठोस रूप स्पष्ट दिखाई दे रहा था। जिसके साथ सिक्खों की अटूट मैत्री थी और इसके मूल में समूचे उत्तर भारत से मराठा–शक्ति को बाहर निकालना था।

जाट संघ और सिक्खों की संयुक्त शक्ति ने मल्हारराव होल्कर के नेतृत्व में गठित मराठा शक्ति के ऊपर कुछ ही दिन पूर्व विजय प्राप्त की थी तथा सिक्खों के अहमदशाह अब्दाली के विरूद्ध सफल प्रतिरोध ने जवाहरसिंह के लिए आक्रमण हेतु नये दृश्य प्रस्तुत कर दिये थे। वह अब इस संघ के सीमान्तों को और आगे बढ़ाने की बात सोचने लगा था ताकि उसमें उत्तरी मालवा के जाट भी शामिल हो जाएँ और मराठा आक्रमण के विरूद्ध शक्तिशाली अवरोधक खड़ा किया जा सके। गोहद भी वीर छत्रपाल राणा के नेतृत्व में एक वर्ष से मराठों के विरूद्ध बहादुरी से संघर्ष कर रहा था। जवाहरसिंह को बहुत अच्छी तरह पता था कि यदि गोहद के राणा को परास्त

करने में मराठों को सफलता प्राप्त हो गई तो उनकी समूची शक्ति उसके विरूद्ध प्रयुक्त होगी। मल्हारराव होल्कर के ऊपर विजय से अपने को गौरवान्वित समझ कर जवाहरसिंह ने स्वयं यह निश्चय किया कि वह अपने जाट मित्र राणा छत्रपाल की सहायता करेगा और इस प्रकार वह चम्बल के पार तथा अपने देश के बाहर मराठों का सफाया करेगा।[52]

जाटों के इस मराठा विरोधी संघ ने पेशवा माधवराव को चिन्तित कर दिया। उसने दक्षिण में रघुनाथराव को 60 हजार घुड़सवार और 100 तोपें देकर, कोल्हापुर से उत्तर मालवा में गोहद के जाट राणा के विरूद्ध भेजा। जानोजी भौंसले को अपने साथ लेकर रघुनाथराव झांसी पहुँचा। भाण्डेर के पास मल्हारराव होल्कर और महादजी सिन्धिया भी उससे आ मिले। जिस समय गोहद को जीतने की योजना बनाई जा रही थी, तब बीमारी से जर्जरित वृद्ध मल्हारराव होल्कर का मई 26, 1766 ई0 को देहान्त हो गया।[53]

रघुनाथराव ने गोहद को घेर लिया। गोहद के जाट राणा छत्रपाल को जवाहरसिंह का शक्तिशाली समर्थन प्राप्त था, अतः उसने दृढ़ता के साथ रघुनाथराव का सामना किया। उधर महादजी सिन्धिया भी रघुनाथराव के व्यवहार से असन्तुष्ट होकर उसका विरोधी हो गया था। अतः अन्य युद्ध की भाँति गोहद के विरूद्ध रघुनाथरव की यह चढ़ाई भी असफल रही। रघुनाथराव कई महीने तक गोहद को घेरे रहा। इसी समय रघुनाथराव ने जवाहरसिंह से भी धन की मांग की और आक्रमण का भय दिखाया।[54] जवाहरसिंह मल्हारराव होल्कर के विरूद्ध विजयी हो चुका था। अतः उसने यह निश्चय कर लिया कि

मराठों के इस आक्रमण को दूर करने के लिए उसे स्वयं गोहद की सहायता करनी चाहिये और मराठों को चम्बल पार नहीं करने देना चाहिये।

लेकिन इच्छा होते हुए भी वह गोहद के राणा की कोई सहायता नहीं कर पाया, क्योंकि उस समय वह एक भयंकर रोग से पीड़ित था। साथ ही मराठों का पूर्ण रूपेण दमन करने के लिये वह एक लम्बी–चौड़ी योजना बनाने में उलझ गया। इसके लिए उसने नजीबुद्दौला के पास बहादुरसिंह और दिलेर सिंह को मराठा विरोधी संगठन बनाने के लिए भेजा।[55] दूसरी ओर उसने मराठों से भी शान्ति वार्ता जारी रखी। उसने अपने एक दूत मोहकमसिंह को पेशवा के पास संधि वार्ता के लिए भेजा, लेकिन मोहकमहसिंह अपने मनोरथ में विफल रहा जिससे उसे वापस लौटना पड़ा, क्योंकि मराठे युद्ध के पक्ष में थे और बड़ी मात्रा में धन देकर भी उनके साथ संधि की कोई संभावना नहीं थी। अतः अपने रोग से मुक्ति प्राप्त करने पर जवाहरसिंह ने डीग और कुम्हेर का राज्य प्रबन्ध अपने छोटे भाई रतनसिंह को सौंपा और स्वयं 30 हजार से भी अधिक पैदल और घुड़सवारों की सेना के साथ दीपावली के बाद नवम्बर 2, 1766 ई0 को धौलपुर की ओर रवाना हुआ। उसने यह निश्चय कर लिया था कि यदि रघुनाथराव अपनी अनुचित मांगों पर दृढ़ रहता है तो दृढ़ता के साथ रणक्षेत्र में उसका मुकाबला किया जायेगा। नवम्बर 11, 1766 ई0 को धौलपुर पहुँच कर उसने वहाँ के बाग में अपना सैनिक शिविर लगाया और युद्ध की तैयारी में जुट गया।[56]

धौलपुर से जवाहरसिंह ने अपने वकील मानसिंह के द्वारा रघुनाथराव के पास यह सन्देश भेजा कि गोहद का राणा छत्रसाल उसका मित्र है, अतः वह

उसे परेशान न करे। साथ ही उसके (जवाहरसिंह) के प्रति जो उनके विचार हैं, वह उसे बताये। चतुर रघुनाथराव ने तब जवाहरसिंह रूपी इस संकट को टालना चाहा, क्योंकि इस समय वह गोहद के राजा के साथ संघर्षरत था, जिसमें उसे सफलता नहीं प्राप्त हो रही थी। गोहद के राणा से निपट लेने के बाद ही वह जवाहरसिंह के साथ संघर्ष की सोच सकता था। अतः उसने जवाहरसिंह के दूत को सहानुभूति पूर्ण उत्तर दिया कि उसके स्वामी के प्रति वह मैत्री पूर्ण विचार रखता है। जवाहरसिंह को प्रसन्न रखने के लिए ही उसने गोहद के राणा को माफ कर दिया। इसके उपरान्त रघुनाथपुर ने गोहद के मामले में अधिक उलझना ठीक नहीं समझा और दिसम्बर, 1766 ई0 के प्रारम्भिक दिनों में वह गोहद का घेरा उठा कर, जवाहरसिंह का सामना करने के लिए चम्बल की ओर बढ़ा। इसी समय अहमद शाह अब्दाली को पंजाब में कुछ प्रगति करने में सफलता प्राप्त हो गई और अब वह दिल्ली पर आक्रमण की धमकी दे रहा था। रघुनाथराव और जवाहरसिंह दोनों अहमदशाह अब्दाली को हिन्दुस्तान से बाहर रखना चाहते थे, इसलिए इस खतरे के संदर्भ में दोनों शक्तियों ने अपने झगड़े को सुलझाना ही बेहतर समझा।[57]

अतः तब रामकृष्ण महन्त और उमरावगिर के द्वारा जवाहरसिंह ने मराठों के साथ संधि की शर्तो के बारे में बातचीत प्रारम्भ की। उसने रामकृष्ण महन्त, उमरावगिर गुसाँई और कुछ अन्य मुख्य सरदारों को रघुनाथराव के डेरे में भेजा, जो चम्बल के किनारे पर चार–पाँच दिन तक ठहरे रहे, तब तक यह समझौता वार्ता चलती रही। दिसम्बर 9–10, 1766 ई0 को जवाहरसिंह और मराठा सेनानायक नारोशंकर ने बारी–बारी से एक दूसरे के पड़ाव पर जाकर

भेंट की। जवाहरसिंह की ओर से हरजी चौधरी और रघुनाथराव की ओर से राव नन्दराम की मध्यस्थता में समझौते की शर्ते तय हुई सन्धि की शर्ते निम्न प्रकार थी–

1. भरतपुर में बन्दी सभी मराठा कैदियों को मुक्त कर दिया जाये।
2. जवाहरसिंह के राज्य से लगा हुआ कुछ इलाका जो वस्तुतः मराठों के अधीन था, परन्तु वहाँ के राजपूत निवासियों से कुछ भी रकम वसूल नहीं हो पाती थी। वह सारा इलाका पूर्णतया जवाहरसिंह को दे दिया जाय तथा उसकी सनदें भी जवाहरसिंह को सौंपी जाय और उसके बदले में जवाहरसिंह पाँच लाख रूपये मराठों को देगे।
3. दिल्ली के युद्ध के समय मल्हारराव होल्कर के साथ जो समझौता हुआ, उसमें से बाकी रही 15 लाख रूपये की रकम दे दी जाने पर उस समझौते के बदले दी गई सारी रकम की पूरी भरपाई रसीद दे दी जायेगी और तब आगे के लिए नया समझौता लिखा जायेगा।[58]

इस समझोते की आड़ में रघुनाथराव ने गुसाँईयों से मिलकर जवाहरसिंह को बंदी बनाने की योजना थी परन्तु इसकी खबर जवाहरसिंह को हो गई। यह सब जानकर जवाहरसिंह बहुत क्रोधित हुआ। उसने दिसम्बर 23–24, की रात्रि में अपनी सेना को तैयार कर गुसाँईयों के डेरे पर अचानक आक्रमण कर उनका सारा पड़ाव लूट लिया। इस अचानक आक्रमण में असावधान गुसाँईयों के 600 आदमी मारे गये, परन्तु उमरावगिर, अनूपगिर और मिरजागिर तीनों तीन सौ सवारों के साथ किसी तरह बच कर निकल भागे और चम्बल पार मराठों के डेरे में जा पहुँचे। उनके 1400 घोड़े, 60 हाथी, 200

तोपें व अन्य सारा सैनिक सामान जवाहरसिंह के हाथ लगा।[59] जवाहरसिंह ने गुसाँई सेनानायकों के परिवार वालों को, जो भरतपुर, डीग, कुम्हेर तथा आगरा में रहते थे, वहाँ से लाकर एक ही स्थान पर एकत्र कर स्वयं की निगरानी में रखा। इस लूट में उसे कुल मिलाकर कोई 30 लाख का माल प्राप्त हुआ।[60] गुसाँईयों को शरण देने के बाद भी रघुनाथराव जवाहरसिंह से भेंट के लिए उत्सुक था, लेकिन इसके लिए जवाहरसिंह रघुनाथराव के डेरे पर जाने को तैयार नहीं था, क्योंकि उसे आशंका थी कि रघुनाथराव के यहाँ शरण प्राप्त नागा सवार तब कहीं उस पर अचानक आक्रमण न कर दें। अतः अगले दिन जवाहरसिंह आगरा की ओर रवाना हुआ और रघुनाथराव ने करौली की ओर कूच किया। अहमदशाह अब्दाली के दिल्ली पर सम्भावित आक्रमण से भयभीत होकर की गई यह जाट–मराठा संधि अल्पकालीन युद्ध विराम संधि से अधिक कुछ नहीं थी।

इस प्रकार जाट–मराठा सम्बन्धों में राजनीतिक परिस्थितियों के अनुरूप एकबद्धता का आभास दिखायी देता है। क्षेत्रीय विस्तार व उत्तर भारत में अपने प्रभाव स्थापित करने के आलोक में सम्बन्ध बदलते रहे, कभी सहयोग तो कभी प्रतिद्वन्दिता ने इनकी शक्तियों को कम ही किया। राजनीतिक दूरदर्शिता व स्वार्थपरक राजनीतिक दृष्टिकोण ने इनके सम्बन्धों को कभी एकजुट नही होने दिया। निश्चित ही इनके सम्बन्धों में यदि सकारात्मक निरन्तरता बनी रहती तो अठारहवीं शताब्दी का इतिहास कुछ और ही लिखा जाता।

****

सन्दर्भ

1. तत्कालीन परम्पराओं के अन्तर्गत राजपूतों में उदयपुर की राजकुमारियों की संतान को वरीयता देने की परम्परा थी।
2. श्री गणेश हरी खरे–हिगणे दफ्तर सम्पा0, दो जिल्दों में भारतीय इतिहास संशोधक मण्डल पूना से 1945 ई0 व 1847 ई0, भाग–1, पृ0 108
3. तारीख–ए–अहमदशाही–अज्ञात सरकार संग्रह रा0पु0 कलकत्ता, पृ0 109 ब
4. भाऊ साहेब बांची दूसरी बखर–सीतामऊ संग्रह वि0 एठले द्वारा 1905 ई0 में संकलित, पृ0 2
5. तारीख–ए–अहमदशाही–अज्ञात सरकार संग्रह रा0पु0 कलकत्ता, पृ0 111 ब
6. तारीख–ए–अहमदशाही–अज्ञात सरकार संग्रह रा0पु0 कलकत्ता, पृ0 111 अ
7. सैय्यद गुलाम हुसैन, सियार–उल–मुखतरीन, भाग–3, पृ0 336
8. तारीख–ए–अहमदशाही–अज्ञात सरकार संग्रह रा0पु0 कलकत्ता, पृ0 115 ब
9. तारीख–ए–अहमदशाही–अज्ञात सरकार संग्रह रा0पु0 कलकत्ता, पृ0 117 ब
10. तारीख–ए–अहमदशाही–अज्ञात सरकार संग्रह रा0पु0 कलकत्ता, पृ0 117 ब
11. गोविन्द सखाराम सरदेसाई–सिलेक्शन्स फ्राम पेशवा दफ्तर XXI, पृ0 59
12. इलियट व डाउसन–भारत का इतिहास, भाग–8, पृ0 289
13. पी0सी0 चान्दावत–महाराजा सूरजमल और उनका युग, पृ0 116
14. जदुनाथ सरकार–मुगल साम्राज्य का पतन, भाग–1, पृ0 289
15. सैय्यद गुलाम हुसैन–सियार–उल–मुखतरीन, भाग–3, पृ0 337
16. उपर्युक्त, पृ0 337

17. भाऊ साहेब बांची दूसरी बखर–सीतामऊ संग्रह वि0 एठले द्वारा 1905 ई0 में संकलित, पृ0 7–11

18. हुसैन शाही, पृ0 17

19. पी0सी0 चान्दावत–महाराजा सूरजमल और उनका युग, पृ0 137

20. पी0सी0 चान्दावत–महाराजा सूरजमल और उनका युग, पृ0 138

21. पी0सी0 चान्दावत–महाराजा सूरजमल और उनका युग, पृ0 139

22. गुलाम हसन सामिन–हालात–ए–अहमदशाह अब्दाली, इरविन–अंग्रेजी अनुवाद इण्डियन एण्टीम्बेरी 1907 ई0, पृ0 58–59

23. पी0सी0 चान्दावत–महाराजा सूरजमल और उनका युग, पृ0 145–147

24. फादर बैण्डल–एन अकाउण्ट ऑफ दी जाट किंगडम, पृ0 51

25. जदुनाथ सरकार–मुगल साम्राज्य का पतन, भाग–2, पृ0 144–145

26. भाऊ साहेब बांची बखर–सीता मऊ संग्रह वि0 एठले द्वारा 1905 ई0 में संकलित, पृ0 98–100

27. श्री गणेश हरी खरे–हिंगणे दफ्तर, भाग–2, पृ0 42

28. पी0सी0 चान्दावत–महाराजा सूरजमल और उनका युग, पृ0 162

29. जी0एस0 सरदेसाई–सलेक्शन फ्राम पेशवा दफ्तर XXI पत्र 186

30. पी0सी0 चान्दावत–महाराजा सूरजमल और उनका युग, पृ0 163

31. जी0एस0 सरदेसाई–सलेक्शन फ्राम पेशवा दफ्तर जिल्द II पत्र 126 एवं जिल्द XXVII पत्र 255

32. जी0एस0 सरदेसाई–सलेक्शन फ्राम पेशवा दफ्तर जिल्द II पत्र 126 एवं जिल्द XXVII पत्र 255

33. भाऊ साहेब बांची बखर–सिलेक्शन फ्रॉम पेशवा दफ्तर, पृ0 957

34. पी0सी0 चान्दावत–महाराजा सूरजमल और उनका युग, पृ0 170

35. इमाद, पृ0 179–180

36. के0आर0 कानूनगो–हिस्ट्री ऑफ जाट्स, पृ0 127–128

37. काशीराज–अहलावतएजंग भाऊ व अहमदशाह दुर्रानी, पृ0 8

38. काशीराज–अहलावतएजंग भाऊ व अहमदशाह दुर्रानी, पृ0 8

39. काशीराज–अहलावतएजंग भाऊ व अहमदशाह दुर्रानी, पृ0 8

40. ग्राण्ट डफ–हिस्ट्री ऑफ दी मराठाज, पृ0 30

41. फादर बैण्डल औंर्म की पाण्डुलिपि उद्घृत

42. मनोहरसिंह राणावत–महाराजा जवाहरसिंह जाट, पृ0 41

43. उपर्युक्त, पृ0 41

44. के0आर0 कानूनगो–हिस्ट्री ऑफ जाटस, पृ0 175

45. मनोहरसिंह राणावत–महाराजा जवाहरसिंह जाट, पृ0 44

46. वही, पृ0 44

47. जदुनाथ सरकार–दिल्ली क्रानिकल, पृ0 130

48. मनोहरसिंह राणावत–महाराजा जवाहरसिंह जाट, पृ0 48

49. के0आर0 कानूनगो–हिस्ट्री ऑफ जाटस, पृ0 103

50. के0आर0 कानूनगो–हिस्ट्री ऑफ जाटस, पृ0 178

51. मनोहरसिंह राणावत–महाराजा जवाहरसिंह जाट, पृ0 61

52. के0आर0 कानूनगो–हिस्ट्री ऑफ जाटस, पृ0 109

53. के0आर0 कानूनगो–हिस्ट्री ऑफ जाटस, पृ0 189

54. मनोहरसिंह राणावत–महाराजा जवाहरसिंह जाट, पृ0 61

55. मनोहरसिंह राणावत–महाराजा जवाहरसिंह जाट, पृ0 62

56. जदुनाथ सरकार—फॉल ऑफ दी मुगल एम्पायर, भाग—2, पृ0 346

57. के0आर0 कानूनगो—हिस्ट्री ऑफ जाटस, पृ0 110

58. जदुनाथ सरकार—फॉल ऑफ दी मुगल एम्पायर, भाग—2, पृ0 345—346

के0आर0 कानूनगो—हिस्ट्री ऑफ जाटस, पृ0 190—191

59. जदुनाथ सरकार—फॉल ऑफ दी मुगल एम्पायर, भाग—2, पृ0 345—346

60. मनोहरसिंह राणावत—महाराजा जवाहरसिंह जाट, पृ0 64

****

जाट और मराठों की नीतियों का तुलनात्मक अध्ययन

अठारहवीं सदी एक सुस्पष्ट कालगत समग्रता के इतिहास का चित्रण है। यह सदी अखिल भारतीय साम्राज्य के पतन के बाद कई क्षेत्रीय राज्यों के वर्चस्व व सम्बन्धों की समग्र कहानी बयां करती है। पेशवा काल में मराठा संघ के निर्माण ने दक्षिण में मराठों को न केवल सम्प्रभु शक्ति बनाया बल्कि उत्तर भारत की राजनीति में प्रत्यक्ष भागीदार भी। मराठों के विदेश नीति के मुख्य तीन लक्ष्य थे–राजनीतिक दृष्टि से मराठा प्रसार; धार्मिक दृष्टि से उत्तर के तीर्थ स्थान प्रयाग एवं काशी को प्राप्त करने का प्रयास व आर्थिक लाभ। उत्तर भारत में मराठा प्रसार व आर्थिक लाभ इन्हीं नीति पर जाटों के मराठा से सम्बन्ध परिस्थितियों के अनुरूप बनते व बिगड़ते रहे।

उत्तर भारत की राजनीतिक घटनाओं में जाट–मराठा सम्बन्धों की प्रत्यक्ष शुरूआत जयपुर राज्य के उत्तराधिकार युद्ध से होती है। जयपुर के राजा सवाई जयसिंह की मृत्यु के बाद उसका ज्येष्ठ पुत्र ईश्वरी सिंह कछवाहा राज्य के सामन्तों के सहयोग से गद्दी पर आरूढ़ हुआ। जयसिंह की मृत्यु ईश्वरी सिंह व माधोसिंह के बीच उत्तराधिकार युद्ध का बिगुल था। सवाई जयसिंह की कुटिल नीति तथा अन्य राजपूतों के साथ आपसी संघर्ष के कारण ईश्वरी सिंह को जाटों की सैनिक व कूटनीतिक सहायता पर निर्भर रहना पड़ा। जाटों के एकाग्र भावना से ही वह वास्तव में अपने राज्य को मेवाड़ी–हाड़ौती सेनाओं के आक्रमण से बचा सका। जाटों ने ईश्वरी सिंह के साथ अपनी अटूट मित्रता निभाई। सूरजमल स्वयं जयपुर उसकी मदद को पहुच गया। दूसरी तरफ मल्हारराव ने दो लाख रूपये फौज खर्च के भुगतान की शर्त पर खाण्डेराव को

माधोसिंह की सहायता के लिए रवाना किया। मोती डूंगरी के निर्णायक युद्ध के पूर्व दोनों पक्षों से घेरबंदी तेज हो गयी।

ईश्वरी सिंह ने राव बदन सिंह के पास अपने दूत के हाथों तात्कालिक सहायता के लिए पत्र व पुष्प भेजकर सहायता भेजने की प्रार्थना की। बदनसिंह ने शीघ्र ही युवराज सूरजमल को जयपुर पहुचने का आदेश दिया। फलतः आठ सहत्र सवार, दो सहत्र बर्च्छाधारी व पैदल सैनिकों की एक सेना के साथ सूरजमल कुम्हेर से कूंच किया।[1] इस समय मराठों की प्रधान छावनी मोती डूंगरी पर थी जहाँ से दीवान गंगाधर तातिया (चन्द्रचूड) की कमान में आठ सहस्त्र मराठा सवारों ने जयपुर नगर के चांदपोल फाटक को तोड़कर नगर में प्रवेश करने का प्रयास किया; परन्तु दो घण्टे की झड़प के बाद गंगाधर को पीछे हटना पड़ा।[1(i)] सुजान चरित्र के अनुसार, ''इधर युवराज सूरजमल ने मराठा छावनी पर धावा बोल दिया था। शम्भूराम, सुखराम, सहजराम तथा गोकुलराम गौड़ आदि सेनानायकों ने अग्रपंक्ति में बढ़कर मराठों पर भीषण प्रहार किये। लगभग एक घण्टे तक मुठभेड़ हुई, जिसमें लगभग एक सौ मराठा व राजपूत काम आये। राजपूत–मराठों में मची भगदड़ से छावनी पूर्णतः साफ हो गई।''[1(ii)] उत्तराधिकार के निर्णायक युद्ध में मल्हार राव ने अपने दीवान की कमान में एक विशाल दल कछवाहा चन्दौल पर आक्रमण करने, वहाँ लूटमार तथा उत्पात मचाने के लिए रवाना किया और मुख भाग से स्वयं आक्रमण कर दिया। मराठों का यह आक्रमण अति वेगपूर्ण, आकस्मिक, अप्रत्याशित था। इससे चन्दौल में भारी भगदड़ मच गई। यह स्थिति देखकर ईश्वरी सिंह पराजय का अनुभव करने लगा। इस निराशपूर्ण स्थिति में सूरजमल को चन्दौल

की रक्षा के लिए ललकारा गया। सूरजमल ने मल्हार राव के आक्रमण को निष्फल करने के लिए अपनी खास गोल टुकड़ी से उनका मुकाबला किया। अर्द्ध विजेता मराठा सरदार तथा हटीले जाटों के बीच जमकर युद्ध हुआ। सूरजमल की कृपाण की चमक, गर्वीले जाटों के कठोर प्रहार ने मित्र सैनिकों की शक्ति व कीर्ति कुन्द हो गई और वे पीठ दिखाकर भाग गये। तात्कालिक परिस्थितियाँ मल्हार राव व माधो सिंह की स्थिति विपरीत होती गयी। अपनी सफलता की उम्मीद धूमिल होती देख होल्कर स्वयं मिल–जुलकर सम्मानजनक शर्तो पर समझौता करने के लिए उत्सुक था ईश्वरी सिंह तथा मल्हार राव ने अपनी–अपनी पगड़ी बदलकर बंधुत्व की भावना प्रकट की। ईश्वरी सिंह ने अपने भ्राता माधोसिंह तथा मल्हार राव को युद्ध क्षति की रकम भुगतान का आश्वासन दिया। ईश्वरी सिंह युवराज सूरजमल के साथ होल्कर और उसके सरदारों से मिला और सभी ने मिल बैठकर पारस्परिक मित्रता की शपथ ली। बदन सिंह के कुशल नेतृत्व व निर्णय का ही परिणाम था कि उसने जयपुर उत्तराधिकार युद्ध में सही पक्ष को समर्थन देकर राजपूत नरेशों तथा मराठों को पराजित करके भारतीय इतिहास में जाटों की स्वतंत्र प्रतिभा व प्रतिष्ठा प्रतिपादित की। जिससे राजस्थान के अतिरिक्त दिल्ली के अमीरों में उसकी धाक जम गई।

रूहेलों के खिलाफ युद्ध में जाटों ने वीरता का परिचय दिया जिसमें उनकी राजनीतिक शक्ति में वृद्धि हुयी। जाट मुखिया बदन सिंह की राजा की उपाधि पक्की कर दी गयी। सूरजमल को कुंवर बहादुरसिंह तथा राजेन्द्र की उपाधि से विभूषित कर दिया। सूरजमल को मथुरा की फौजदारी भी दी गई।

बदन सिंह के लिए यह एक ऐतिहासिक सफलता थी। मुगलों और मराठों ने जो तत्कालीन भारतीय राजनीति में महत्वपूर्ण शक्ति थे, जाटों को समानता के स्तर पर लाकर उन्हें एक विशिष्ट स्थिति प्रदान कर दी। बैण्डल लिखता है कि ''जाटों के उत्थान का यह प्रथम पग था यद्यपि इससे पूर्व भी काफी धन और सम्पदा प्राप्त कर रहे थे पर अधिकृत उपाधि के अभाव में वह सत्ता प्राप्त नहीं थी लेकिन अब उनके मुखिया को मुगल सम्राट द्वारा राजा की उपाधि से अलंकृत कर दिया गया तो उनका मस्तक स्वयं ही उन्नत हो गया।''[1(iii)]

अप्रत्यक्ष रूप से प्रतिद्वन्द्वी व सहयोगी जाट–मराठा सम्बन्धों में एक नया मोड़ कुम्हेर घेरे के समय आया। अभी तक जाट व मराठों में सीधा संघर्ष जाटवाड़ा क्षेत्र में नहीं हुआ था। दो उदीयमान शक्तियों में सीधा संघर्ष राजनीतिक, आर्थिक तथा राज्य विस्तार के उद्देश्यों में निहित था। मराठा नेता रघुनाथ राव की सूरजमल से 1 करोड़ की मांग की पूर्ति न होने से इमादुलमुल्क के परामर्श व सहयोग से मराठा सरदारों ने जाटों के अजेय दुर्ग कुम्हेर पर सीधा आक्रमण करने का निश्चय किया। शक्तिशाली मराठा सेना का मैदान में सामना करने में असमर्थ पाकर सूरजमल ने रक्षात्मक दृष्टि से अपने आपकों कुम्हेर दुर्ग के भीतर बन्द कर लिया।

सूरजमल को पूर्व में ही मराठा खतरे का अंदेशा था इसीलिए उसने अपनी सामरिक रणनीति सदैव बेहतर रखी। सूरजमल ने अपने विशाल दुर्ग डीग, कुम्हेर, नव निर्मित भरतपुर दुर्ग तथा वैर को आक्रमणों की ताकत से लोहा लेने के लिए खाद्यान्न, घास दाना तथा शस्त्रास्त्रों से पूर्णतः सुसज्जित कर लिया था। जाटों के अन्य दुर्गो की भांति कुम्हेर समतल मैदान में अति

साधारण किन्तु **भव्य** दुर्ग था। डीग तथा भरतपुर के मध्य मार्ग में स्थित होने तथा समीपस्थ भू–भाग में पेयजल के अभाव के कारण इसकी स्थिति काफी लाभदायक थी। यह परगना सूरजमल की जागीर में शामिल था और यहीं उसका स्थायी निवास व रनिवास भी था।

यह नगर अति सम्पन्न तथा समृद्ध सुविख्यात व्यापारिक केन्द्र था और यही पर हिन्दुस्तान के सम्पन्न साहूकारों की बावन कोठियां थी। समस्त जाट राज्य का ड्योढ़ी खजाना यही पर सुरक्षित था, इससे इसका नाम कुबेरपुर भी पड़ गया था। इस नगर के बारे में थिफेनथेलर लिखते है कि, ''यह एक असाधारण छोटा सा नगर है। इसमें पत्थरों के पुख्ता अनेक मकान है, जिनके फर्श पत्थरों से जुड़े है। अधिकांश मकानों की दीवारों पर चूने की लिपाई की गई है। सुदृढ़ पक्की दीवारों से सुरक्षित अति ऊँचाई पर बने आकर्षक राज प्रसाद समस्त नगर में दर्शनीय है।[1(iv)]

कुम्हेर दुर्ग की सामरिक सुरक्षा के विषय में वेण्डल लिखता है, ''इस समय शहर के चारो ओर बने मिट्टी के परकोटा की काफी मोटाई थी और क्षेत्रीय ज़मींदारों में प्रचलित प्राचीन स्थापत्य शैली के आधार पर परकोटे पर अनेक बुर्जें थी। इसके चारों ओर बनी खाई के अलावा ये बुर्जें तथा प्रवेश द्वारों के समक्ष निर्मित घूंघस व आगे बने मरहले इस स्थान की सुरक्षा के प्रमुख साधन थे परन्तु इसके बाद भी सूरजमल ने दुर्ग में सभी प्रकार का पर्याप्त गोला बारूद था और तोपों में प्रयोग किए जाने वाले निम्न कोटि के लोहे के टुकड़ों तथा सीसा जैसी धातु को प्रचुर मात्रा में सुरक्षित रखा गया था। इस लौह धातु की मार शत्रु को हानि पहुँचाने, बाहर एकत्रित भीड़ को हटाने या

कुछ लोगों को घायल करने में सहायक थी। सूरजमल ने अपनी सर्तकता से सम्भावित दीर्घकालिक युद्ध के लिए पर्याप्त उपाय कर लिए थे। दुर्ग में प्रचुर खाद्य भण्डार था। मेरा विश्वास है कि जितना भण्डार जाट किलों में सुरक्षित था, उतना हिन्दुस्तान के अन्य किसी किले में सम्भवतः नहीं हो सकता था। तोपखाना, गोला–गोली, बारूद तथा इनको तैयार करने का सामान यहाँ प्रचुर मात्रा में उपलब्ध था और यह आश्चर्यजनक है कि ज़मींदारों व किसानों ने इतने अल्प काल में ये सब कुछ कैसे संकलित कर लिया था और उसका सफल प्रयोग व संचालन किस प्रकार सीख लिया था।[1(v)] सूदन लिखता है–नगर प्राचीन तथा बुर्जों पर रखी असंख्य छोटी–छोटी व बड़ी–बड़ी तोपें एक दूसरे से आपस में सटी हुई थी और उनके बीच में कोई भी स्थान रिक्त नहीं था।[1(vi)] वास्तव में सूरजमल अपनी रणनीति में सावधान व सतर्क था। उसने अपनी सेना के साथ इसकी इतनी सुदृढ़ मोर्चाबंदी की कि यह दुर्ग अभेद्य हो गया। इमादुलमुल्क व मराठों के संयुक्त प्रयास के बावजूद किले पर विजय के दिन–प्रतिदिन प्रयास निष्फल होते गये। मराठों व शाही सेनाओं को सुरक्षित व सैन्य प्रसाधनों से सम्पन्न दुर्ग का घेरा डालकर अपनी भूल का एहसास होने लगा और तब मराठों ने महसूस किया कि बिना बड़ी तोपों के कुम्हेर दुर्ग को जीतना कठिन है।

कुम्हेर दुर्ग के घेरे का समय जाटों के लिए गंभीर चुनौती का समय था। सूरजमल यह भली–भाँति जानता था कि केवल दुर्ग की रक्षा से ही राज्य को भावी विनाश की आकंक्षा से मुक्त नहीं किया जा सकता था। इसलिए सूरजमल ने मराठों के दबाव को कम करने के लिए कूटनीतिक कदम बढ़ाये,

उसने सम्राट एवं वजीर इन्तियामुद्दौला को कूटनीतिक पत्र लिखे कि इमादुलमुल्क मराठों के साथ मिलकर साम्राज्य को नष्ट कर रहा है। अगर उसकी महत्वाकांक्षी योजनाओं को शुरू में ही नहीं कुचल दिया गया तो, उसकी सफलता उसका सिर घुमा देगी और जब वह अपने वृद्ध चाचा को वजारत से एक तरफ धक्का देगा और सम्राट के साथ कटु व्यवहार करेगा तो उसके रास्ते में कौन रूकावट बनेगा? सूरजमल ने शाही तोप खाने से इमादुलमुल्क को तोपें न देने का आग्रह करते हुए सम्राट के समक्ष यह प्रस्ताव रखा कि सफदरजंग तथा राजपूताना के राजाओं को आमंत्रित करके उनकी सहायता से सभी के समान शत्रु मराठों को उत्तर भारत से निकाल बाहर करें।[2] सूरजमल को इस बात का ज्ञान था कि कुम्हेर घेरे पर मराठा दबाव तभी कम किया जा सकता है जब गठबन्धन सेना कमजोर होगी और अन्य क्षेत्रीय शक्तियों का सहयोग मराठों को न मिले इसी प्रकार बजीर इन्तियामुद्दौला ने भी सम्राट को शाही तोपें देने से मना करने की सलाह दी थी। यही कारण था कि सूरजमल के पत्र एवं वजीर की सलाह ने उस पर जादू का कार्य किया। शाही मोहर युक्त पत्र जयपुर व जोधपुर के राजाओं तथा सफदरजंग को भेजे गए, जो सभी मराठों के हाथों हानि उठा चुके थे। इन पत्रों में उन्हें दक्षिणी कण्टकों से हिन्दुस्तान को मुक्त करने के लिए शाही झण्डे के नीचे अपनी सेनाओं को एकत्र करने के लिए कहा गया था।

घेरे के प्रारम्भिक दिनों में ही सूरजमल ने अपनी कूटनीतिक मोर्चाबंदी से मराठों पर दबाव डालना शुरू कर दिया था जिसके फलस्वरूप मराठों ने कुम्हेर घेरा पर और अधिक सैन्य दबाव बनाना शुरू किया। कुम्हेर दुर्ग की मोर्चाबंदी

तोड़ने के प्रयास में रघुनाथराव का इकलौता पुत्र खाण्डेराव होल्कर मारा गया। मल्हारराव होल्कर के पुत्र की मृत्यु के बाद जाटों पर हमले दूगने वेग से होने लगे। पुत्र के शोक में क्रुद मल्हारराव होल्कर ने प्रतिज्ञा की कि ''सूरजमल का सिर विच्छेद करके कुम्हेर दुर्ग की मिट्टी यमुना में डालूगाँ, तभी मेरा जन्म सार्थक होगा, अन्यथा मैं प्राण त्याग दूगाँ।''[3]

सैनिक दृष्टि से जाटों ने विशाल मराठा सेना के मुकाबले में कुम्हेर की प्रतिरक्षा में तीन महीने तक अद्‌भुत धैर्य एवं साहस का परिचय दिया, तथापि प्रतिशोध की उग्र भावना से मराठा भुजा में जिस नवशक्ति का संचार किया उसका वजन जाट भी महसूस करने लगे। हिन्दुस्तान में ऐसी कोई साहसी शक्ति नहीं थी, जो मराठों के विरूद्ध खुलकर उनकी सहायता के लिए आगे आ सके। इस कारण सूरजमल को अपना भविष्य धुँधला दिखाई देने लगा। वह समझौते का इच्छुक था, किन्तु अब मल्हारराव होल्कर का दुराग्रह उसके मार्ग में बाधक था। ऐसे अवसर पर सूरजमल की चतुर पत्नी हंसिया (रानी किशोरी) ने अपने उपाय व कूटनीतिक कुशलता से पति के निस्तेज जीवन में आशा का संचार किया।

रानी किशोरी जो मराठा सरदारों की आपसी स्पर्द्धा और जयप्पा सिन्धिया की विश्वनीयता से अवगत थी। शत्रु के शिविर में फूट डालने के उद्देश्य से एक रात्रि को उसने रूपराम कटारी के पुत्र तेजराम कटारी को, सूरजमल की पगड़ी एवं उसके पत्र के साथ, जयप्पा सिन्धिया के पास पगड़ी बदलकर उसकी मित्रता एवं संरक्षण पाने की याचना के साथ भेजा। जयप्पा सन्धिया ने सूरजमल की धरोहर को स्वीकार करके एक उत्साहवर्द्धक पत्र के

साथ अपनी पगड़ी भेजी और अपनी सदाशयता के सर्वाधिक पवित्र प्रमाण के रूप में बेल भण्डार से पुष्प भेजे।[4] दूसरी ओर सूरजमल ने सम्राट व वजीर इन्तिजाम से भी पत्राचार किया और साथ ही जयप्पा सिन्धिया को भी कूटनीति रूप से रघुनाथराव का घेरा उठाने के सुझाव भी दिलवाया, जिसके उपरान्त रघुनाथ अकेला पड़ गया और उसके सहयोगी रहे इमादुलमुल्क भी वजीर व सम्राट की गतिविधियों से अपनी सुरक्षा का उपाय खोजने लगा।

इस प्रकार सूरजमल की कूटनीतिक योजना ने घटना क्रम को उसके पक्ष में इस तरह मोड़ दिया कि जाट सेना द्वारा कुम्हेर की अभूतपूर्व रक्षा के अन्तिम चरण में इमादुलमुल्क व मराठों का सक्रिय दबाव कम होने लगा और जब जाट राजा 30,00,00 रूपयों के अतिरिक्त सम्राट को दे दी जाने वाली पेशकश की राशि इमादुलमुल्क व मराठों को देने को तैयार हो गया, तो 18 मई, 1754 ई0 को दोनों पक्षों के बीच तुरन्त शांति स्थापित हो गई।[5] "सूरजमल ने अपने कूटनीति निर्णयों" से कुम्हेर के घेरे को उठवाने में कामयाब रहा।

अहमदशाह अब्दाली के भारत आक्रमण के समय पंजाब विजय व दिल्ली प्रवेश के दौरान उसने उत्तर भारत की शक्तियों से नजराना पेशगी की मांग रखी जिसमें सूरजमल जाट भी था। परन्तु सूरजमल के द्वारा कोई धन न देने के कारण अब्दाली ने जाट राज्यों में कत्लेआम मचाया परन्तु सूरजमल ने धैर्य एवं साहस का परिचय देते हुए समर्पण नहीं किया। इसी समय अब्दाली ने महामारी के डर से जाट प्रदेशों को खाली कर दिया। अब्दाली के आक्रमण के पूर्व ही सूरजमल ने अपनी सुरक्षा हेतु मराठों से सम्बन्ध बनाने का प्रयास किया था। फरीदाबाद के युद्ध में मराठा सेना को अब्दाली ने पराजित किया जिसका

नेतृत्व अन्ताजी माणकेश्वर ने किया। पराजित होने के बाद अन्ताजी माणकेश्वर को सूरजमल के प्रदेश मथुरा में शरण लेनी पड़ी थी। इन परिस्थितियों में अन्ताजी माणकेश्वर इस तथ्य को भली भाँति समझ गया था कि अब केवल जाटों के सहयोग से ही आक्रान्ता का प्रतिरोध और मराठा हितों की रक्षा सम्भव है।

सूरजमल, अहमदशाह अब्दाली के विरूद्ध मराठों का सहयोग करने को तैयार था। दूसरे अहमदशाह अब्दाली के विरूद्ध राजा सूरजमल ने जिस धैर्य, साहस और कूटनीतिक चातुर्य का परिचय दिया, उस कारण मराठें भी राजा सूरजमल की शक्ति का लोहा मान गये थे, जिसके कारण स्वयं पेशवा ने अपने सरदारों को यह सख्त हिदायत दी कि वे किसी भी हालात में जाटों से शत्रुता मोल न लें।[6]

इन परिस्थितियों में जाट–मराठा समझौता होने की प्रबल संभावना थी। फलतः दोनों पक्षों में इस बात पर सहमति हो गई कि आगरा जिले में और दोआब की पश्चिमी सीमा पर दनकोर आदि इलाके, जिन पर सूरजमल ने अधिकार कर लिया था, वे उसके पास रहने दिये जाए। सूरजमल ने 1754 ई0 की युद्ध क्षति की शेष राशि के भुगतान का वचन दिया। उसने दोआब में मराठा विस्तार में बाधा न डालने का आश्वासन भी दिया, इससे मराठों को अपने पीछे का भय नहीं रहा और उन्होंने तेजी से दोआब पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया। किन्तु जब सूरजमल ने आगरा सूबे, जिसकी सूबेदारी और नायब सूबेदारी पेशवा ने मल्हार राव होल्कर तथा विट्ठल सदाशिव को दे रखी थी, पर अपने पूर्ण प्रशासनिक अधिकारों का दावा किया, तो विट्ठल सदाशिव

ने पेशवा की इच्छा जानने तक रूपराम कटारी को प्रतीक्षा करने के लिये कहा।[7]

इस प्रकार जाट–मराठा समझौते की वजह से अहमदशाह अब्दाली के लौटने के शीघ्र बाद शक्तियाँ अपने–अपने प्रदेशों पर अपने अधिकारों की पुनर्स्थापना करने में जुट गयी। मराठों ने जाट राजा सूरजमल के प्रदेशों में कोई हानि नहीं पहुचाई। मराठों की एक सैनिक टुकड़ी रेवाड़ी तथा दूसरी भुसावर में रूकी। दोनों शिविरों से मराठों ने सूरजमल द्वारा विजित प्रदेशों को मान्यता प्रदान की तथा आगरा का दुर्ग भी इस शर्त के साथ दिया कि पूर्व में निर्धारित राशि का यथा समय भुगतान करते रहें।[8] मराठों के दक्षिण में लौट जाने पर इमादुलमुल्क मराठे तथा सूरजमल की त्रिमैत्री स्थापित हो गई। उस पर नजीबुद्दौला अहमदशाह अब्दाली को पुनः आमंत्रित कर रहा था जिससे कि स्थिति उसके पक्ष में हो सके। इमादुलमुल्क तथा जाटों ने मराठों के बल पर सम्राट आलमगीर द्वितीय की इन्त्याज्युद्दौला के समर्थकों के साथ मिलकर 29 नवम्बर, 1759 ई0 में हत्या कर दी और औरंगजेब के वरिष्ठ बेटे कामबख्श के पौत्र को शाहजहाँ सानी की उपाधि के साथ गद्दी पर आसीन कर दिया।[9] यह सुनकर अहमदशाह अब्दाली पुनः भारत की ओर मुड़ा।

अहमदशाह अब्दाली राजा सूरजमल को मराठों से अलग देखना चाहता था। अतः उसने रोहिला सरदार हाफिज रहमत खाँ को सूरजमल के पास मित्रता के लिए भेजा परन्तु मराठों के आगमन से यह प्रयत्न असफल रहा।

सूरजमल ने शक्ति संतुलन बनाये रखने के लिए 5000 सैनिक मराठों की सहायतार्थ राजधानी में तथा इतने ही सैनिक दत्ता जी सिन्धिया ने

शुक्रताल भेजे जो वहाँ के नजीबुद्दौला की सहायता के लिए डटा था।[10] अहमदशाह अब्दाली नजीबुद्दौला की सहायता के लिए आगे बढ़ा उसने मराठों को परास्त किया तथा दत्ताजी सिन्धिया को बरारीघाट पर मार डाला। इमादुलमुल्क भरतपुर भाग गया।

दिल्ली में फिर अब्दाली के खौफ ने लोगों को सुरक्षित स्थान तलाशने को मजबूर किया। अब्दाली के विरूद्ध सैनिक रणनीति के लिए मराठा सरदारों की युद्ध परिषद की बैठक आगरा में बुलायी गई जिसमें सूरजमल को भी आमंत्रित किया गया। स्वभाव एवं विचारों की भिन्नता के कारण सदाशिवराव भाऊ व सूरजमल में मतभेद होना अनिवार्य था। मराठा सदारों व सूरजमल की सर्वसम्मति के बावजूद इनके सैन्य सलाहों को भाऊ ने मानने से इन्कार कर दिया।

अब्दाली के खिलाफ सदाशिवराव भाऊ युद्ध के नवीन ढ़ंग का अनुसरण करना चाहता था, किन्तु उसने जिस तरह से सूरजमल और मल्हारराव होल्कर का अपमान किया और अपने दम्भ एवं हठ में उनकी सलाह की उपेक्षा की, वह भावी संघर्ष के प्रति एक श्रेष्ठ सेनापति की नीति एवं व्यवहार के विषय में प्रश्नचिन्ह अवश्य लगाता है। मराठा इतिहासकार ग्रान्ट डफ के अनुसार, ‘‘भाऊ ने सूरजमल के प्रस्ताव का विरोध इसलिए किया क्योंकि वह मल्हारराव होल्कर का विरोधी था और जो मल्हारराव होल्कर तथा जाट के बीच घनिष्ठ सम्बन्धों के कारण दुराग्रह रखता था।’’[11] सदाशिवराव भाऊ के अनुचित व्यवहार से सूरजमल को अत्यधिक ठेस पहुँची और वह उससे सम्बन्ध विच्छेद को उतारू हो गया, किन्तु मल्हारराव होल्कर व जयप्पा सिन्धिया ने उसे शीघ्रता न करने

और परिस्थितियों के अनुसार चलने की सलाह देकर किसी तरह शान्त किया।[12] दूसरी और इन मराठा सरदारों ने सदाशिवराव भाऊ को जाट समर्थन के महत्व एवं प्राथमिकता से अवगत कराते हुए उसे धैर्य अपनाने की सलाह दी। इस पर भाऊ ने सूरजमल के सामने जमुना जल लेकर भविष्य में उसके उचित परामर्श पर ध्यान देने का आश्वासन दिया। इस प्रकार मल्हारराव होल्कर व जयप्पा सिन्धिया के आग्रह पर सूरजमल सारी बात भुलाकर उनकी सफलता के लिए कार्य करने लगा। इसके बाद संयुक्त सेनाओं ने मथुरा के मार्ग से दिल्ली की ओर प्रस्थान किया।[13] उस समय सूरजमल के साथ 60 हजार सेना थी। इमादुलमुल्क जो सूरजमल के दरबार में राजनीतिक आश्रित था के साथ सूरजमल तथा मराठों ने दिल्ली पर आधिपत्य कर लिया।

दुर्ग पर विजय के साथ ही जाट राजा सूरजमल ने इमादुलमुल्क की सहमति से अपने लोगों को तैनात करके दुर्ग के भीतर अपनी व्यवस्था स्थापित कर दी। इससे सदाशिवराव भाऊ बहुत क्रुद्ध हुआ और उसने जाटों का बन्दोबस्त हटाकर स्वयं के लोगों को नियुक्त कर दिया। यह बात राजा सूरजमल के लिए असहनीय थी। उसने इमादुलमुल्क की रक्षा करने और उसे फिर वजीर के आसन पर बिठाने के लिए बड़ा जोखिम उठाया था। सदाशिवराव भाऊ को यह विदित था, फिर भी उसने न जाने कहाँ से नारोशंकर को ला खड़ा किया। सूरजमल, मल्हारराव होल्कर और जयप्पा सिन्धिया—सबने समझाया—बुझाया पर कोई लाभ न हुआ सदाशिवराव भाऊ को किसी अनिष्ट की आशंका नहीं थी उसे अपनी मनमानी करनी थी।[14]

राजा सूरजमल ने अपने विलक्षण एवं दूरदर्शी सलाहकार रूपराम कटारी को एकांत में बुलाकर अपनी चिंता और खिन्नता प्रकट की। रूपराम कटारी को भी रंग ढ़ंग कुछ भले नहीं दिख रहे थे। उसने सूरजमल से कहा कि हमारा यहाँ टिकना ठीक नहीं और अकलमंदी यहाँ से निकल जाने में ही है; परन्तु निकल भागना आसान नहीं था क्योंकि मल्हारराव होल्कर और जयप्पा सिन्धिया के शिविर सूरजमल के शिविर के साथ ही सटे हुए थे।

सदाशिवराव भाऊ लगभग एक लाख सैनिकों के साथ दिल्ली व उसके आस–पास दो महीने तक रूका। प्रस्थान करते समय पेशवा से जो नगद रूपया मिला था, वह मार्ग में ही खर्च हो चुका था। हिन्दुस्तान के धूर्त मराठा कमाबिसदारों से उसको कुछ भी नहीं मिल सका। आगरा पहुचने से पूर्व उसने पेशवा से आर्थिक सहायता करने की प्रार्थना की थी। उसने लिखा–''मुझको कहीं से रूपया नहीं मिल रहा है। दोआब परगनों में गड़बड़ी चल रही है और अधीनस्थ सरदार टाल–मटोल कर रहे हैं। इसलिये न राजस्व मिल रहा है और न खंडनी की कुछ रकम। सवारों को घोड़ा देना है गत वर्ष मेरे सैनिकों को विदाई की बख्शीश दी जानी थी, वह भी अभी तक नहीं दी गई है। जब मैं उनको खाने के लिए पेट भर भोजन नहीं दे सकता हूँ, तो मैं उनकी बकाया बिदाई, बख्शीश और नालबंदी कैसे दे सकता हूँ? दिल्ली के चारों ओर गड़बड़ चल रही है। यहां के सेठ–साहूकार भी इधर–उधर चले गये है। इससे यहाँ किसी से ऋण नहीं लिया जा सकता।''[14(i)] भाऊ ने अपनी खराब आर्थिक स्थिति को लेकर पेशवा को कई पत्र लिखे थे।

सदाशिवराव भाऊ को सदा पैसे की तंगी रहती थी। उसका मासिक खर्च पहले साढ़े चार महीनों में साढ़े पाँच लाख रूपये, उसके बाद के ढ़ाई महीनों में सात लाख रूपये और अंतिम तीन महीनों में दस लाख रूपये था कुल मिलाकर बहत्तर लाख रूपये, उसकी आय के तिगुने से भी अधिक था। वह भी ऐसे समय और ऐसे प्रदेश में था, जहाँ उसका एक भी मित्र नहीं था और न कोई ऐसा महाजन ही था, जो उसे उधार देने को राजी होता।[15] उसने एक नया और बर्बर उपाय सोचा। दिल्ली के लालकिले में दीवान–ए–आम की शानदार और रत्नजड़ित छत पर भाऊ की आँख जा गड़ी। इसके बाद की घटनाओं का वर्णन इतिहासकार के0आर0 कानूनगों ने बड़ी यथार्थता के साथ किया है उसने अपने मन में सोचा, 'यह रही वह छत जो मुझे आर्थिक संकट से उबारेगीं।' मैं इसे उखड़वाकर पिघलवा लूँगा, उससे अपने सैनिकों को वेतन दे दूँगा और इसके स्थान पर लकड़ी की छत लगावा दूँगा। इस प्रकार पहले निश्चय कर लेने के बाद, उसने जयप्पा सिन्धिया, मल्हारराव होल्कर और राजा सूरजमल को इस विषय में उनकी राय जानने के लिए बुलवाया। सूरजमल ने साम्राज्य की गरिमा के इस अंतिम अवशेष को बचाए रखने के लिए सदाशिवराव भाऊ से जो निम्नलिखित मर्मस्पर्शी अनुरोध किया था, वह उसके हृदय की गरिमा का सर्वोत्तम परिचायक है। उसने कहा था, भाऊ साहब, सम्राट के राज सिंहासन का यह कक्ष सम्मान एवं आदर का स्थान है। नादिरशाह और अहमदशाह अब्दाली ने शाही महल की अनेक बहुमूल्य वस्तुओं को तो अपने साथ ले गये, परन्तु उन्होंने भी इस छत को छोड़ दिया। इस समय सम्राट और अमीर लोग आपके बस में हैं; हम अपनी आँखों से इस स्थान के सौन्दर्य को नष्ट होते नहीं देखेंगे। इससे हमें कोई वाहवाही नहीं मिलेगी

बल्कि गद्दारी, व बदनामी ही प्राप्त होगी। मेरी इस विनम्र प्रार्थना पर आप कृपा करके उचित विचार करे। यदि आपको धन की कमी हैं, तो आप मुझे हुक्म कर दीजिए। इस छत को बचाने के लिए मैं पाँच लाख रूपये देने को तैयार हूँ।[16] परन्तु, सदाशिवराव भाऊ ने छत को तुड़वा डाला और उसकी चाँदी निकलवा ली। जब सारी चाँदी पिघला ली गई, तो वह कुल तीन लाख की हुई।

राजा सूरजमल ने देखा कि भाग्य ने उसे एक ऐसे घटना चक्र में फँसा दिया है, जिससे बाहर रहने के लिए वह बहुत कुछ दे डालता। वह पछता रहा था कि वह सदाशिवराव भाऊ के साथ दिल्ली क्यों आया। यद्यपि मल्हारराव होल्कर और जयप्पा सिन्धिया ने उसकी सुरक्षा का वचन दिया था, फिर भी सूरजमल का चिंतित होना स्वाभाविक था, क्योंकि वह देख रहा था कि सदाशिवराव भाऊ उस पर नजर रख रहा है उन दोनों मराठों सरदारों को यह डर था कि कहीं उनका विवेकहीन सरदार यहाँ तक न बढ़ जाये कि वह सूरजमल को उसकी इच्छा के विरूद्ध दिल्ली में रोक रखने की चेष्टा करें। क्योंकि उन्होंने उसे दिल्ली तक साथ चलने के लिए मनाया था, इसलिए वे अनुभव करते थे कि उसे बच निकलने में सहायता देना उनका नैतिक कर्तव्य है। उन्होंने रूपराम कटारी को बुलवाया और बहुत ही गोपनीय रूप से यह सुझाव दिया कि, जैसे भी हो, सूरजमल को आज दिल्ली से निकल जाना चाहिए। सदाशिवराव भाऊ का डेरा कुछ दूर है। उसे पता न चले, इस प्रकार चुपचाप खिसक जाइऐ। हमने जो आपको वचन दिया है, वह इस प्रकार हमने निबाह दिया। इसके बाद हमें कुछ न कहिएगा। यह कहते हुए उन दोनों ने पछतावे के तौर पर अपने कान पकड़े और यह मौन शपथ ली कि वे फिर

कभी इस प्रकर घमंडी और निष्ठाहीन स्वामी के लिए अपनी इज्जत को खतरे में नहीं डालेंगे और न स्वयं ही कभी ऐसी विषम स्थिति में उलझेंगे।[17]

इसके पश्चात् सूरजमल ने मराठों का साथ छोड़ दिया और फिर अपनी राजधानी में वापस लौट गया। ऐसी विषम परिस्थिति में सूरजमल का मराठों को साथ छोड़ना बड़ा घातक हुआ।

राजा सूरजमल और सदाशिव राव भाऊ के बीच विद्यमान आन्तरिक मतभेदों पर आधुनिक इतिहासकारों ने अपनी–अपनी दृष्टि से भिन्न मत व्यक्त किये है। मराठा इतिहासकार गोविन्द सखाराम सरदेसाई के अनुसार–''नवाब शुजाउद्दौला तथा अहमदशाह दुर्रानी का मिलन मराठा पक्ष के लिए अति घातक सिद्ध हुआ। अन्य हानि सूरजमल के एकाएक साथ छोड़कर दिल्ली से अपनी राजधानी भरतपुर को वापिस लौटने से उठानी पड़ी।''[18] सरदेसाई ने सूरजमल के मराठों का साथ छोड़ने पर कुछ बिन्दुओं पर ही ध्यान केन्द्रित किया है।

1. सूरजमल ने भाऊ को मराठा परिवार, विशाल तोपखाना तथा अतिरिक्त समान को चम्बल पर अथवा जाटराज्य मथुरा में छोड़कर मराठों की नैसर्गिक कज्जकाना प्रणाली को अपनाने पर जोर दिया।
2. सियार–उल–मुताखरीन के आधार पर सरदेसाई ने लिखा है कि भाऊ ने अपने सैनिकों के वेतन चुकाने के लिए दीवान–ए–खास की चांदी की छत को तोड़वा दिया।
3. मीर गाजीउद्दीन (इमादुलमुल्क) को दिल्ली साम्राज्य की वजारत पुनः प्रदान नहीं की।

4. जाट राजा अपने राज्य के बाहर मराठा पक्ष में अपनी सेवाए प्रदान करने के लिए तैयार नहीं हुआ। उसका (सूरजमल) कहना था कि जो कुछ भी बन पड़ेगा, वह अपने ही देश में करेगा।
5. दिल्ली पर अधिकार करने के बाद सूरजमल ने मांग प्रस्तुत की कि उसे दिल्ली का प्रबंधक नियुक्त कर दिया जाये।

सरदेसाई का यह मानना है कि ऐतिहासिक तथ्यों की कसौटी पर सूरजमल के रूष्ट होने का अन्य कोई कारण प्रतीत नही होता है।[19]

सरदेसाई का प्रथम कारण निःसन्देह सत्य तथा परिपृष्ट है, इसमें मराठा राज्य तथा मराठा नीति का हित समाहित था दूसरे के बारे में सियार का लेखक लिखता है कि, ''जाट शासक को इससे इतना अधिक धक्का लगा कि मराठों ने जनता द्वारा सम्मानित पवित्र स्थानों की ओर ध्यान नहीं दिया। उन्होंने पवित्र समाधि स्थानों को अपवित्र करके उनके सोने–चांदी के बर्तनों का अपहरण किया। निजामुद्दीन औलिया के चैत्यालय को लूटा गया। मुहम्मद शाह का मकबरा भी उनकी लूट से नहीं बच सका और वे ठोस सोने की धूपदानी, दीवट तथा बर्तनों को उठाकर ले गये। इनको तोड़कर उन्होंने सिक्के दाले। अन्त में उन्होंने दीवान–ए–आम की चांदी की छत को तुड़वाकर सिक्का बनवाये। यह छत अति आकर्षक नक्कासी का नमूना थी।[20] तीसरे मत के बारे में इमादउस्सआदत का लेखक लिखता है कि भाऊ ने सूरजमल से दो करोड़ की मांग की थी उसको सन्देहास्पद देखरेख में रखा। जाट राजा को मल्हार राव के अनुग्रह से मुक्ति मिली।[21] इस तथ्य पर सरदेसाई तथा अन्य मराठा इतिहासकारों को कोई अन्य प्रमाण नहीं मिले है।

सूरजमल के दिल्ली पर अधिकार की मांग भाऊ स्वीकार करने में पूर्णतया असमर्थ था। इस प्रकार आचार्य शेजवल्कर लिखते है–''दिल्ली पर शासन करने की अपनी इच्छा की पूर्ति में स्वयं को असफल पा कर सूरजमल ने भाऊ की नीति पर क्रोध व्यक्त किया और चुपचाप भाऊ के शिविर से खिसक गया।[21(i)]

वैण्डल, सरकार, कानूनगो और सरदेसाई का मत है कि युद्ध की सभा में विचार विमर्श करते हुए जब जाट राजा सूरजमल ने अपने विचार प्रस्तुत किये तो उसे गड़ेरिया कहकर अपमानित किया गया था। ग्रांट डफ के अनुसार मराठा लेखों से यह स्पष्ट हो जाता है कि सूरजमल की घृणा का कारण भाऊ का असहनीय आचरण था।[21(ii)] इतिहासकारों के इन विचारों पर डॉ0 राम पाण्डे का कथन है कि युद्ध परिषद की बैठक दिल्ली आने से पूर्व आगरा में हो चुकी थी अतः तर्क शक्ति के आधार पर यह मत सही प्रतीत नही होता कि मात्र किसान कहने से ही सूरजमल वापस लौट गया।[21(iii)] इस तथ्य पर पेशवा का भाऊ को यह सलाह कि सूरजमल का यथोचित सम्मान व उसकी सलाह पर विचार भी किया जाय। इसकी सत्यता को पुष्टि नहीं करता। इमाद–उल–सादात का लेखक कहता है कि सदाशिव राव भाऊ ने सूरजमल से दो करोड़ रूपये की मांग की थी पर यह कथन भी सत्य नहीं जान पड़ता क्योंकि पेशवा ने सदाशिव राव भाऊ से वायदा की हुई राशि को लेने से भी मना कर दिया था।[21(iv)]

मराठी लेखों के अनुसार सूरजमल ने मराठों का साथ इसलिए छोड़ा क्योंकि अवध के नवाब शुजाउद्दौला ने मराठों तथा अहमदशाह अब्दाली से

समझौते का प्रयास किया था। इस समझौते के अनुसार कि अहमदशाह अब्दाली तथा मराठों को अपने–अपने देश वापिस लौट जाना चाहिए तथा मुगल सम्राट को पूरी शक्ति दी जानी चाहिए। इस मत को आर्शीवादी लाल श्रीवास्तव ने भी मान्यता दी।[22] डॉ0 राम पाण्डे को यह मत भी स्वीकार्य नहीं है क्योंकि यह शान्ति प्रस्ताव जाटों व मराठों की दिल्ली लूट से पहले के थे और जब सूरजमल ने मराठों का साथ छोड़ा तो अवध का नवाब शुजाउद्दौला पहले से ही अब्दाली के शिविर में उपस्थित था।[23]

सर जदुनाथ सरकार ने एक और कारण पर प्रकाश डाला है कि मई 1760 ई0 में गोविन्द वल्लाल ने अलीगढ़ को कब्जे में करने का प्रयास किया जो सूरजमल से छिपा न रह सका।[24] परन्तु यह तथ्य भी उचित नहीं जान पड़ता क्योंकि अलीगढ़ का दुर्ग जाट राजा के कब्जे में नहीं था। उसे अहमदशाह अब्दाली फरवरी 1760 ई0 में ही अपने कब्जे में कर चुका था। गोविन्द वल्लाल का प्रयास अहमदशाह अब्दाली के विरूद्ध था और इससे सूरजमल की मैत्री पर कोई प्रभाव नहीं पड़ सकता था।[25]

डा0 राम पाण्डे का मत है कि सूरजमल भावी खतरे से अपने को अलग रखना चाहता था। वह दोनों में से किसी की भी हार से प्रसन्न था। वह भली प्रकार जानता था कि जो भी जीतेगा वही मुगल साम्राज्य की उसके द्वारा जीते गये इलाके की माँग करेगा या छीनेगा। फिर भी वह यह भी अनुभव करता था कि मराठों का दक्षिण जाने का मार्ग उसके इलाकों में होकर गुजरता है जाट राजा सदाशिवराव भाऊ से मैत्री के लिए गंभीर नहीं था। इसका प्रमाण इस बात से मिलता है जब मल्हारराव होल्कर तथा जयप्पा सिन्धिया ने जमुना को

पार किया और धौलपुर में सदाशिवराव भाऊ से मिले तो सूरजमल ने मल्हारराव होल्कर के माध्यम से यह आश्चर्य भरा प्रस्ताव भी रखा था कि दिल्ली विजय के उपरान्त दिल्ली उसके नियंत्रण में तथा मुगल साम्राज्य की वजीरत इमादुलमुल्क को दी जानी चाहिए। सूरजमल की यह माँग इस बात की द्योतक है कि वह इमादुलमुल्क जिसके पास न तो इलाके थे और न फौज ही थी को साथ रखकर मुगल साम्राज्य के नियंत्रण की महत्वाकांक्षा लिए था। यद्यपि सूरजमल को यह आशा नहीं थी कि यह प्रस्ताव मराठों को स्वीकार्य होगा। मल्हारराव होल्कर तथा जयप्पा सिन्धिया ने तब यह उत्तर दिया था कि यह आश्वासन नाना साहब से स्वीकृति के बाद ही दिया जा सकता है।[26] इसके उपरान्त सदाशिवराव भाऊ की हाँ या ना का कोई साक्ष्य उपलब्ध नहीं है।

डा0 राम पाण्डे सूरजमल द्वारा मराठों का साथ छोड़ने के विषय में अपना निष्कर्ष इस प्रकार उल्लेखित करते है।

1. आगरा में सूरजमल तथा मल्हारराव होल्कर के युद्ध विषयक प्रस्ताव सदाशिवराव भाऊ द्वारा अस्वीकृत कर दिये गये थे।
2. मथुरा में सदाशिवराव भाऊ मस्जिदों को देखकर क्रोधित हो गया था। इससे सूरजमल और सदाशिवराव भाऊ के मतभेद उग्र हो गये थे।
3. दिल्ली विजय के उपरान्त सूरजमल ने दिल्ली को अपने नियंत्रण में लेने की बात कही परन्तु इसे भी अस्वीकार कर दिया गया था[27] और दिल्ली की व्यवस्था नारोशंकर को दे दी गई थी।[27(i)] इससे सदाशिवराव भाऊ और सूरजमल में काफी मतभेद हो गया और जब मल्हारराव होल्कर

तथा सिन्धिया राजा सूरजमल को उसके वकील रूपराम कटारी द्वारा यह कहलवाया कि सदाशिवराव भाऊ उसे बन्दी बनाना चाहता है और उसकी सम्पदा को कब्जे में लेना चाहता है तो सूरजमल रात्रि के गहन अन्धकार में मराठा शिविर छोड़ गया।[28] सदाशिवराव भाऊ ने सूरजमल का पीछा करवाया परन्तु वह हाथ न आ सका। डॉ0 राम पाण्डे के निष्कर्ष पर्याप्त रूप से समीचीन है और उत्तर भारत के शासकों में उस समय यह भय और दृढ़ हो गया था जब सदाशिवराव भाऊ के विषय में यह बात प्रचारित हो गई थी कि वह पेशवा के पुत्र विश्वासराव को दिल्ली के सिंहासन पर बिठाने का संकल्प लेकर आया है। यद्यपि यह प्रचार नजीबुद्दौला ने किया था। मराठों की प्रशासकीय व्यवस्था इतनी परिपक्व नहीं थी कि उत्तर भारत के राजा जिसका स्वागत करते। सूरजमल के मराठों से सम्बन्ध समाप्त होने पर अहमदशाह अब्दाली ने शुजाउद्दौला राजा देवीदन्त तथा जार्जिया के अली बेग के द्वारा सूरजमल से पारस्परिक समझौता वार्ता की अब सूरजमल ने अपने को एकांकी पाकर शर्ते स्वीकार कर ली जिसके फलस्वरूप उसे खिल्लत प्रदान की गई और दोनों पक्षों ने एक दूसरे की सहायता की शपथ ली।[29] इस सन्धि का व्यावहारिक परिणाम केवल सूरजमल की तटस्थता को सुनिश्चित करना था न कि अफगान पक्ष के लिए उसकी सक्रिय सहायता प्राप्त करना। सदाशिवराव भाऊ के कठोर व्यवहार के बाद भी सूरजमल की सहानुभूति मराठों के साथ बनी रही। उसने अहमदशाह अब्दाली से यह मैत्री सन्धि केवल किसी संकट काल में बचाव के विचार से की थी, क्योंकि उस समय विद्यमान भारत की राजनीतिक दशा में

किसी भी राज्य के लिए बिल्कुल अलग–थलग पड़ जाना बहुत ही खतरनाक था।[30]

मराठों के पानीपत युद्ध में पराजय के बाद जाट–मराठा सम्बन्धों में सकारात्मक सहयोग की शुरूआत होती है बदलते राजनीतिक परिस्थितियों में जाट राजा सूरजमल ने क्षेत्रीय विस्तार का क्रम जारी रखा। जिससे जाटों का मुकाबला रूहेला सरदारों से हुआ। महाराजा सूरजमल नजीबुद्दौला के सैनिकों द्वारा अचानक मारा गया। जिसके बाद जवाहरसिंह जाट राज्य का उत्तराधिकारी घोषित हुआ। जवाहर सिंह भी अपने पिता की भाँति मराठों को उत्तर भारत से बाहर निकालने की नीति का समर्थक था। किन्तु रूहेला सरदार नजीबुद्दौला से अपने पिता की मृत्यु का प्रतिशोध लेने के लिए उसे अपने मराठा विरोध की इच्छा का त्याग ही नहीं किया बल्कि मराठों से सहायता माँगने के लिए उसे विवश भी होना पड़ा।

जवाहरसिंह ने अपने पिता की मृत्यु का बदला लेने के लिए अपने अनुभवी राजदूत रूपराम कटारी को मल्हारराव होल्कर के पास भेज कर नजीबुद्दौला के विरूद्ध संघर्ष में सहायतार्थ उसे आमंत्रित किया।[31] पेशवा को भी सहायता के लिये लिखा। इसके फलस्वरूप पेशवा ने मल्हारराव होल्कर को संदेश भेजा कि इस युद्ध में वह जवाहरसिंह की सहायता करे। जवाहरसिंह की ओर से 24 लाख रूपये दिये जाने का वादा करने पर अपनी 20 हजार मराठा सेना को लेकर मल्हारराव होल्कर स्वयं रूहेला सरदार नजीबुद्दौला के विरूद्ध सहायता करने के लिए तत्पर हो गया। मल्हारराव होल्कर नजीबुद्दौला से भी धन प्राप्त कर, उसकी रक्षा का वचन दे चुका था। वह नहीं चाहता था कि

नजीबुद्दौला पराजित हो जाय और दिल्ली पर जवाहरसिंह का अधिकार हो। उसकी नीति जाटों से अधिकाधिक धन प्राप्त करने के साथ ही उनकी सामरिक शक्ति को कमजोर करने की थी जिसका प्रत्यक्ष लाभ मराठों को मिले।[32]

मल्हारराव होल्कर ने जवाहर सिंह की मदद के साथ नजीबुद्दौला से भी गुप्त सन्धि कर ली। जिसके कारण प्रत्यक्ष रूप से जाट व अप्रत्यक्ष रूप से नजीबुद्दौला के साथ था। यहाँ यह प्रश्न पैदा होता है कि जाट राजा जवाहरसिंह के सम्मुख ऐसी कौन सी विवशताएँ थी; जिसके चलते उसको अपने पिता के घातक रूहेला सरदार नजीबुद्दौला को माफ ही नहीं करना पड़ा बल्कि उसे मिलने का समय भी देना पड़ा। इस सम्बन्ध में फादर वैण्डल ने लिखा है कि सफलता के अन्तिम सोपान पर मराठा सरदार मल्हारराव होल्कर ने अपने आलस और नजीबुद्दौला के प्रति लगाव के कारण सारे मामलों को बिगाड़ दिया। उसने सन्धि का प्रस्ताव उस समय रखा जब कि रूहेलाओं के लिए बिना शर्त समर्पण को टालना सम्भव नहीं था। उसने जवाहर सिंह को उस पर सहमत होने के लिए बाध्य कर दिया।[33]

डॉ0 कानूनगो महोदय ने फादर वैण्डल के मत का पूर्ण समर्थन करते हुए सम्पूर्ण दोष मल्हारराव होल्कर पर डाला और इसके समर्थन में फरवरी 15, 1765 ई0 को नजीबुद्दौला द्वारा मल्हारराव होल्कर को दी गई भेंट जिसमें उसे एक हाथी, दो घोड़े, जवाहरात से भरी नौ तश्तरियाँ थी उसने मित्र के साथ विश्वास घात का पारितोषिक की संज्ञा दी। यद्यपि यह तथ्य सत्य है कि मल्हारराव होल्कर एक बड़ी भूमिका में था लेकिन समुचा दोष उस पर ही

डालना इतिहास के साथ न्याय करना नहीं हैं; क्योंकि राजा जवाहरसिंह के विश्वस्त सिक्ख मात्र इस अफवाह से कि अहमदशाह अब्दाली सिन्धु नदी पार कर चुका हैं, जवाहरसिंह को बिना बताऐ मैदान छोड़कर अपने पैतृक क्षेत्र पंजाब चले गये थे।[34] दूसरे जवाहरसिंह के वे जाति बन्धु, जो अनिच्छा पूर्वक युद्ध में सम्मिलित हुये थे। वह नहीं चाह रहे थे कि जवाहरसिंह को सफलता मिले और वह नजीबुद्दौला से सम्पर्क बनाये हुए थे।[35] तीसरे जवाहरसिंह की सेना में भी शिथिलता आने लगी थी। इन परिस्थितियों में अगर मराठा सरदार मल्हारराव होल्कर भी बिना सूचना दिये युद्ध क्षेत्र से चला जाता तो जाट राजा जवाहरसिंह के संकट का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। जबकि वह अन्तिम समय तक जवाहरसिंह के साथ रहा। अतः सारा दोष मराठों पर डालना उचित प्रतीत नहीं होता। किन्तु यहाँ यह उल्लेखनीय है कि अन्य कारणों को दरकिनार करते हुए स्वयं जवाहरसिंह ने भी इसके बाद अपना प्रमुख शत्रु मराठों को ही माना और जिसके चलते उसने 24 लाख रूपये की मल्हारराव होल्कर को पूर्व में तय की गई राशि का पूर्ण भुगतान नही किया।[36]

जवाहरसिंह ने अपने अन्तिम समय साम्राज्य विस्तार की नीति को तीव्र गति में जारी रखा। महाराजा जवाहरसिंह ने गोहद के जाट वीर छत्रपाल राणा व सिक्खों की संयुक्त शक्ति के मैत्री संघ ने एक जाट संघ का निर्माण किया जिसके मूल में समूचे उत्तर भारत से मराठा शक्ति को बाहर निकलना था। जवाहर सिंह ने रामपुरा, भिण्ड आटेर पर अधिकार कर लिया। ये राज्य अभी तक खण्डनी (राज्य कर) मराठों को देते थे जो अब जाटों के नियंत्रण में आ गये। जवाहरसिंह ने कालपी का अभियान किया जिसमें जालौन के साथ–साथ

पूरे कालपी प्रान्त, कछावाधार, भवदार, सिकरवार, डंड्रोली, खितौली आदि क्षेत्र उसके आधिपत्य में आ गये। केवल ग्वालियर और झांसी ही मराठों के अधिकार में रह गये। जवाहरसिंह को मराठों के विरूद्ध लगभग ढ़ाई महीने के इस निर्णायक अभियान में उल्लेखनीय सफलता प्राप्त हुई थी। जवाहरसिंह की इन उपलब्धियों ने पूना में पेशवा के सम्मुख यह समस्या उत्पन्न कर दी थी कि यदि वह उत्तर में मराठा शक्ति को बनाए रखना चाहता है तो शक्तिशाली जाट नरेश से किसी प्रकार समझौता करना आवश्यक है। जवाहर सिंह अपनी इन सफलताओं से प्रेरित होकर मराठों को चम्बल पार ही नहीं, समूचे उत्तर भारत से बाहर निकालने की योजना बनाने में प्रयत्नशील हुआ।[37] अपनी योजनाओं को परिपूर्ण करने तथा उसकी सफलता को सुनिश्चित बनाने हेतु जवाहरसिंह मराठों के साथ समझौता करने को तैयार हो गया। अतः पेशवा के आदेशानुसार सितम्बर, 1767 ई0 के प्रारम्भ में मराठा अधिकारियों से जवाहरसिंह ने संधि कर ली। उक्त संधि की शर्तों के अनुसार बिट्ठलराव के अधीन जिगनी और जतलवार परगनें तथा महादजी कासी के अधिकार वाले तंवरधार और सिकरवार क्षेत्र जवाहरसिंह को सौंप दिये गये। यह समझौता हो जाने के बाद जवाहरसिंह चम्बल पार कर वापस भरतपुर लौट गया और तद्न्तर मराठों को उत्तरी भारत से बाहर निकालने की योजना में लग गया।

जवाहरसिंह ने विभिन्न महत्वपूर्ण शक्तियों को मराठों के विरूद्ध संगठित करने का प्रयास प्रारम्भ किया। इस हेतु जवाहरसिंह ने अपना एक दूत पादरी डोन पेड्रो डी सिल्वा को अक्टूबर, 1767 ई0 में कलकत्ता के लिए भेजा।[38] रूहेल सरदार नजीबुद्दौला को भी इस मराठा विरोधी संघ में सम्मिलित होने के

लिए आमंत्रित किया।[39] उसने अब राजपूत राजाओं के साथ परामर्श करने के लिए राजस्थान जाने का कार्यक्रम बनाया। मारवाड़ का राजा विजयसिंह राठौड़ उसका मित्र ही था। किन्तु मराठों का बड़ा विरोधी था। जवाहरसिंह की विशेष प्रेरणा से मारवाड़ नरेश वियजसिंह ने जवाहरसिंह के पास विचार विमर्श करने के लिए पंचोली परसादीराम को डीग भेजा। उसके उपरांत मराठा विरोधी योजना को ठोस रूप देने के लिए जवाहरसिंह ने विजयसिंह को अजमेर के निकट पुष्कर नामक पवित्र स्थान पर आमंत्रित किया।[40] स्वयं भी पुष्कर की ओर चलने की तैयारियों में जुट गया।

पुष्कर का मार्ग जयपुर राज्य की सीमाओं से होकर गुजरता है। अतः जवाहरसिंह ने पुष्कर यात्रा पर जाने हेतु जयपुर नरेश माधोसिंह से स्वीकृति प्राप्त करनी चाही। माधोसिंह ने स्पष्ट कहा कि यदि वह मित्र के रूप में पुष्कर जाना चाहता है तो आवश्यक सेना के साथ जयपुर की सीमा से सहर्ष निकल सकता है किन्तु जाट राजा जवाहरसिंह अपनी सैनिक शक्ति के नशे में मस्त था। उसने माधोसिंह की सलाह की अवहेलना करते हुए, एक बड़ी सेना लेकर सन् 1767 ई0 के अक्टूबर माह के अन्तिम दिनों में जयपुर की सीमा में लूटमार करता हुआ पुष्कर की ओर अग्रसर हुआ। इस समय जयपुर का शासक माधोसिंह जाट राजा का सामना करने की स्थिति में नहीं था। अतः वह अपमान का घूँट पी कर रह गया। जवाहरसिंह सकुशल नवम्बर 6, सन् 1767 ई0 के दिन पुष्कर पहुँच गया। वहाँ जोधपुर नरेश विजयसिंह ने उसका स्वागत किया और नवम्बर 7, 1767 ई0 के दिन दोनों राजा पगड़ी बदल भाई बन गये।[41]

पुष्कर निवास के समय दोनों शासकों ने मराठों को उत्तर भारत से खदेड़ने के लिए सन्धि की, जिसमें यह निश्चित हुआ कि मालवा प्रदेश जयपुर महाराजा माधोसिंह को दे दिया जायेगा तथा गुजरात प्रदेश पर जोधपुर के राजा विजयसिंह का अधिकार हो जायेगा और पूर्वी भाग जाटों के अधिकार में रहेगा। सब सम्मिलित रूप से मराठों का विरोध कर उन्हें उत्तरी भारत से बाहर कर देंगे।[42]

अतः ततसम्बन्धी योजना पर विचार विमर्श करने के लिए महाराजा विजयसिंह ने जयपुर के शासक माधोसिंह को पुष्कर आने का निमंत्रण दिया। लेकिन माधोसिंह न तो इस संधि वार्ता में सम्मिलित हुआ और न उसने इस संधि को क्रियान्वित करने के सम्बन्ध में अपने सहयोग अथवा सहमति विषयक कोई स्वीकृति सूचित की थी, जो इस आयोजन की सफलता के लिए आवश्यक था। अतः यह मराठा विरोधी योजना तो असफल हो ही गई। साथ में जाट राजा जवाहरसिंह और कछवाहा शासक माधोसिंह में पूर्व समय से चला आ रहा मनमुटाव और भी अधिक उभर आया। इस प्रकार उत्तर भारत से मराठों के प्रति संयुक्त मोर्चा बनाने की कवायत जवाहरसिंह की छोटी सी चूक से शिथिल पड़ गई। इसी समय जवाहरसिंह की एकाएक मृत्यु हो गई। जवाहरसिंह के बाद कुछ ही वर्षों में जाट राज्य का पतन हो गया जिसके फलस्वरूप इस क्षेत्र में मराठा विरोधी जाट सेना की गतिविधिया शिथिल पड़ गईं।

इस प्रकार जाट–मराठा सम्बन्धों में समय–समय पर बहुत उतार–चढ़ाव दिखाई देता है। इनके सम्बन्धों में एकबद्धता व सकरात्मक निरन्तरता का

अभाव हो रहा। उत्तर भारत की तात्कालिक परिस्थितियों में क्षेत्रीय शक्तियों के बीच स्वार्थपरक राजनीतिक दृष्टिकोण ही परिलक्षित होता है जो अपने–अपने हित लाभ पर बदलता रहा; जिसने अठारहवीं शताब्दी में राष्ट्रीय एकरूपता को कभी जन्म ही नहीं लेने दिया। जिसका अन्ततः परिणाम कमजोर राजनीति व्यवस्था में विदेशी शक्तियों की आधार भूमि को निर्मित किया।

****

सन्दर्भ

1. सूदन : (ऐतिहासिक काव्य) सूजान चरित्र, पृ0 28–32

1 (i) सूर्यमल : वंशभास्कर, पृ0 3495

1 (ii) सूदन : (ऐतिहासिक काव्य) सूजान चरित्र, पृ0 33–36

1(iii) फादर बैण्डल–जदुनाथ सरकार–अंग्रेजी अनुवाद द्वितीय खण्ड, पृ0 455

1(iv) ईस्टर्न राजा–गजेटियर में ब्रोकमेन द्वारा उद्धृत, पृ0 17

1(v) फादर वैण्डल–एन एकाउण्ट आफ दा जाट्स किग्डम (अंग्रेजी अनुवाद जदुनाथ सरकार)

1(vi) सूदन–पृ0 248

2 के0आर0 कानूनगो–हिस्ट्री ऑफ जाट्स, पृ0 91

3 भाऊ साहेब बांची दूसरी बखर–सीतामऊ संग्रह वि0 एठले द्वारा 1905 ई0 में संकलित, पृ0 5

4 पी0सी0 चान्दावत–महाराजा सूरजमल और उनका युग, पृ0 115

5 तारीख–ए–अहमदशाही–अज्ञात सरकार संग्रह रा0पु0, कलकत्ता, पृ0 128 ब

6 पी0सी0 चान्दावत–महाराजा सूरजमल और उनका युग, पृ0 151

जी0एस0 सरदेसाई–सलेक्शन फ्राम पेशवा दफ्तर भाग–2, पृ0 80

7 पी0सी0 चान्दावत–महाराजा सूरजमल और उनका युग, पृ0 152

8 जी0एस0 सरदेसाई–सलेक्शन फ्राम पेशवा दफ्तर XXVII पत्र 158

9 जी0एस0 सरदेसाई–सलेक्शन फ्राम पेशवा दफ्तर भाग–2, पृ0 49

10 जी0एस0 सरदेसाई–सलेक्शन फ्राम पेशवा दफ्तर भाग–2, पृ0 49

11 ग्राण्ट डफ–हिस्ट्री ऑफ दी मराठाज, भाग–1, पृ0 519

12 काशीराज–अहलावतएजंग भाऊ व अहमदशाह दुर्रानी, पृ0 8

13 पी0सी0 चान्दावत–महाराजा सूरजमल और उनका युग, पृ0 173

14 नटवरसिंह–महाराजा सूरजमल, 1707 ई0–1763 ई0 (हिन्दी अनुवादक–वीरजी) प्रथम संस्करण, पृ0 114

14 (i) उपेन्द्रनाथ शर्मा–जाटों का नवीन इतिहास, भाग–2, 1685–1763, पृ0 402

15 जदुनाथ सरकार–फॉल ऑफ दी मुगल एम्पायर, खण्ड–2, पृ0 185

16 के0आर0 कानूनगो–हिस्ट्री ऑफ जाट्स, पृ0 131–132

17 उपर्युक्त, पृ0 139

18 सरदेसाई : मराठों का नवीन इतिहास, खण्ड 2, पृ0 547

19 वही, पृ0 547

20 सियार, जि0 3, पृ0 385–6

21 इमाद, पृ0 181

21(i) शेजवल्कर : पानीपत 1761, पृ0 92

21(ii) ग्रांट डफ खण्ड 1, पृ0 609

21(iii) रामपाण्डे–भरतपुर अपटु 1826, पृ0 71

21(iv) जी0एस0 सरदेसाई : सिलेक्शन्स फ्राम पेशवा दफ्तर II 126 XXVII, पृ0 225

22 आर्शीवादी लाल श्रीवास्तव–शुजाउद्दौला, भाग–1, पृ0 71

23 राम पाण्डे–भरतपुर अपटु, 1826 ई0 पृ0 71

24 जदुनाथ सरकार–फॉल ऑफ दी मुगल एम्पायर, भाग–2, पृ0 256

25 राम पाण्डे–भरतपुर अपटु 1826 ई0, पृ0 71

26 काशीनाथ नारायण–भाऊ साहेब यांची कैफियत, पृ0 9–10

27 पी0सी0 चान्दावत–महाराजा सूरजमल और उनका युग, 182

27(i)नटवरसिंह–महाराजा सूरजमल, 1707 ई0–1763 ई0 (हिन्दी अनुवादक–वीरजी) प्रथम संस्करण, पृ0 113

28 के0आर0 कानूनगो–हिस्ट्री ऑफ जाट्स, भाग–1, पृ0 182

29 आर्शीवादी लाल श्रीवास्तव–शुजाउद्दौला, भाग–1, पृ0 188

30 के0आर0 कानूनगो–हिस्ट्री ऑफ जाट्स, पृ0 114–121

31 मनोहरसिंह राणावत–महाराजा जवाहरसिंह जाट, पृ0 40

32 मनोहरसिंह राणावत–महाराजा जवाहरसिंह जाट, पृ0 43

33 के0आर0 कानूनगो–हिस्ट्री ऑफ जाट्स, पृ0 103

34 मनोहरसिंह राणावत–महाराजा जवाहरसिंह जाट, पृ0 48

35 जदुनाथ सरकार–फॉल ऑफ दी मुगल एम्पायर, भाग–2, पृ0 341

36 मनोहरसिंह राणावत–महाराजा जवाहरसिंह जाट, पृ0 48

37 मनोहरसिंह राणावत–महाराजा जवाहरसिंह जाट, पृ0 67

38 उपर्युक्त, पृ0 76

39 उपर्युक्त, पृ0 76

40 उपर्युक्त, पृ0 77

41 ओझा–जोधपुर का इतिहास, भाग–2, पृ0 718

शिवदत्त बारहट–जोधपर राज्य का इतिहास, पृ0 71

42 शिवदत्त बारहट–जोधपर राज्य का इतिहास, पृ0 71

****

जाट शक्ति का मराठों पर प्रभाव

भारतीय इतिहास में अठारहवीं सदी के संक्रान्ति काल में अनेक प्रकार के शक्तिशाली क्षेत्रीय राज्यों का वर्चस्व रहा। मराठे जहाँ विस्तार वादी राज्य की प्रक्रिया में आगे रहे वही भरतपुर राज्य के रूप में जाट शक्ति का उदय हुआ। क्षेत्रीय विस्तार व आपसी सैन्य युद्धों में युद्ध व सन्धि जैसी घटनाएँ दोनों में परस्पर होती रही। जिसने तात्कालिक राजनीति पर महत्वपूर्ण प्रभाव डाला। इस राजनीतिक अस्थिरता व राज्य विस्तार में मराठें अग्रिम पंक्ति में खड़े रहे। जाट–मराठा सम्बन्धों ने मराठों की राजनीतिक स्थिति पर बहुत दूरगामी प्रभाव डाला।

सन् 1743 ई0 में जयपुर नरेश सवाई जयसिंह की मृत्यु हो गई। उसकी मृत्यु के उपरान्त उसके पुत्रों, ईश्वरीसिंह और माधोसिंह में भातृघाती युद्ध हुआ। माधोसिंह का जोधपुर, बूंदी, कोटा के शासकों ने तो समर्थन किया ही मराठे भी उसी के समर्थन में आ गये। ईश्वरीसिंह की सहायता के लिए सूरजमल जाट अपनी सेना लेकर चला। ईश्वरीसिंह के विरोधी सेना की संख्या सात गुनी थी। ईश्वरीसिंह के साथ केवल सूरजमल था जिसकी स्वयं की कोई पहचान नहीं थी। बागड़ के युद्ध में सूरजमल की वीरता ने माधोसिंह की मराठों सहित सेना के छक्के छुड़ा दिये। सूरजमल ने सात राजपूत नरेशों तथा मराठों को पराजित करके भारतीय इतिहास में जाटों की स्वतंत्र प्रतिभा व प्रतिष्ठा प्रतिपादित की। इससे राजस्थान के अलावा दिल्ली के अमीरों में भी उसकी धाक जम गई थी। इस संघर्ष ने राजपूत राज्य के आन्तरिक मामलों में मराठों के समक्ष सूरजमल को विख्यात कर दिया। जिससे उसके राजनीति व रणनीति दोनों कौशल की

श्रेष्ठता साबित कर दी। अपनी सत्ता व शक्ति की स्थिरता के लिए सूरजमल ने मथुरा की फौजदारी व कुछ शाही परगनों के पट्टे की मांग वजीर सफदरगंज व सम्राट अहमद शाह से की थी। मराठो ने इस मांग का न केवल विरोध किया बल्कि अन्ताजी ने क्रुद्ध होकर सम्राट को प्रभावित करने के लिए धमकी भी दी कि वह सूरजमल को आगरा प्रान्त में परगने प्रदान नहीं करें।[1] परन्तु मराठा भय से आशंकित सम्राट व वजीर ने शक्ति संतुलन को बनाये रखने के लिए सूरजमल को मथुरा का फौजदार नियुक्त करने का फरमान व खिलअत प्रदान कर दी। साथ ही वजीर की अभिशंषा पर राव बदनसिंह को महेन्द्र और सूरजमल को कुंवर बहादुर राजेन्द्र के विरूद्ध से सम्मानित किया।

मीर बख्शी इमादुलमुल्क के परामर्श पर मराठों ने जाटों के अजेय दुर्ग कुम्हेर पर सीधा आक्रमण करने का निश्चय किया। यह दो उदीयमान शक्तियों के बीच सीधा संघर्ष था, जिसमें राजनीतिक, आर्थिक तथा राज्य विस्तार का उद्देश्य निहित था। समकालीन अभिलेखों के आधार पर जाट–मराठा संघर्ष के तीन प्रमुख कारण थे। प्रथम–यह कि मराठों की प्रबल इच्छा आगरा अजमेर प्रान्त, मथुरा तथा अन्य परगनों और नारमौल की फौजदारी पर वास्तविक अधिकार करने की थी परन्तु आगरा प्रान्त के अधिकांश जिलों तथा परगनों पर सुयोग्य राव बहादुर सूरजमल का अधिकार था और मथुरा की फौजदारी भी उसके पास थी। द्वितीय–दिल्ली गृह युद्ध में सूरजमल ने सफदरगंज का प्रबल समर्थन किया था, इमादुलमुल्क अपनी नैतिक पराजय के कारण सूरजमल के प्रति ईर्ष्यालु था व मराठों के सहयोग से उसे दण्ड देना चाहता था। तृतीय–मराठा सरदारों ने जाट राज्यों के पूर्व और पश्चिम दोनों सिरों पर अपने

प्रभाव स्थापित कर लिए थे परन्तु अभी तक जटवाड़ा उनके राजनीतिक प्रभाव, सैनिक हस्तक्षेप व अन्तर्निनितियों से विमुख था। जाट राज्य की आर्थिक सम्पन्नता जो अभी तक उनकी लूट, बरबादी, आर्थिक शोषण तथा राजनैतिक प्रभाव व हस्तक्षेप से पूर्णतः मुक्त था। मराठो को अपने सैन्य कार्यवाहियों के लिए नकद रूपये की जरूरत रहती थी। इसीलिए सूरजमल से युद्ध के बदले समझौता करने के लिए दो करोड़ रूपये रघुनाथ राव ने माँगे। सूरजमल का विश्वस्त रूपराम कटारी चालीस लाख रूपये देने को राजी था पर मराठे अपनी मांग पर अड़े रहे और उन्होंने कुम्हेर का घेरा डाल दिया। चार मास तक घेरा पड़ा रहा परन्तु मराठे सूरजमल को परास्त न कर सकें। इस घेरा का निम्नांकित प्रभाव हुआ–

1. मल्हारराव होल्कर का प्रिय पुत्र खांडेराव मारा गया।
2. सूरजमल की प्रतिष्ठा में पहले से अधिक वृद्धि हो गई।
3. राजनीतिक व आर्थिक दोनों दृष्टियों से मराठों की प्रतिष्ठा धूमिल हुई।

कुम्हेर में जाट राजा सूरजमल के कार्य की समीक्षा करते हुए वैण्डल लिखता है, ''सूरजमल की धाक इस घेरे के दिनों में और भी बढ़ गयी तथा सारे हिन्दुस्तान पर छा गई। अब इसे और यश प्राप्त हो गया, कि वह उन दो सरदारों से, जो अपनी–अपनी सेनाओं में उसके पद के समकक्ष थे, सौदेबाजी करने में और उनसे अपनी मनचाही शर्ते मनवाने में सफल हुआ।''[2] मराठों का सरदार रघुनाथराव जाट–प्रदेश खाली करके चला गया था, मल्हारराव होल्कर और इमादुलमुल्क दिल्ली चले गये और जियाजीराव सिन्धिया पश्चिमी

राजपूताना चला गया। इस प्रकार तत्कालीन राजनीति में मराठो के समक्ष सूरजमल का सितारा बुलन्द हो गया।

अहमदशाह अब्दाली के बढ़ते राजनीतिक प्रभाव के विरूद्ध दिल्ली के वजीर इमादुलमुल्क ने जाटों व मराठों से सहायता के लिए प्रार्थना की। सूरजमल के मन में इमादुलमुल्क के प्रति कोई लगाव व सहानुभूति नहीं थी। क्योंकि पूर्व में इमादुलमुल्क सूरजमल का निरन्तर विरोध करता रहा। चूंकि नजीबुद्दौला अहमदशाह अब्दाली से सम्पर्क बनाये हुए था अतः इमादुलमुल्क ने विषम परिस्थितियों को ध्यान में रखकर सूरजमल के आगे ही समर्पण कर दिया। अब्दाली का प्रतिरोध मराठा सरदार अंताजी माणकेश्वर ने किया परन्तु वह वीरतापूर्ण संघर्ष के बावजूद पराजित हो गया फलतः उसे राजा सूरजमल के क्षेत्र में शरण लेने के लिए बाध्य होना पड़ा। अहमदशाह अब्दाली ने दिल्ली में एक महीने आतंक फैलाये रखा। शाह दुर्रानी ने राजधानी में प्रवेश करते ही शाही दरबार में तैनात साम्राज्य के सभी प्रान्त के वकीलों को उसके प्रति निष्ठा भाव व पेशकश प्रस्तुत करने के लिए आमंत्रित किया। फ्रेंकलिन का मत है कि, ''केवल जाटों को छोड़कर अन्य सभी ने (दुर्रानी के) आमन्त्रण को स्वीकार कर लिया था। इससे दुर्रानी ने जाटों को सैनिक शक्ति से दबाने का निर्णय लिया।[3] 22 फरवरी, 1757 ई0 को दिल्ली में अपना काम निपटाकर और आलमगीर द्वितीय को उसका राज सिंहासन दुबारा सुपुर्द कर, अहमदशाह अब्दाली ने जाट राजा सूरजमल से राज्यकर वसूल करने के लिए दक्षिण की ओर कूच किया।[4]

जाट राजा ने अंताजी माणकेश्वर और इमादुलमुल्क के परिवार को शरण देकर अहमदशाह अब्दाली के क्रोध को और प्रज्वलित कर दिया था। अब्दाली ने इन शरणार्थियों की माँग की तो सूरजमल ने उत्तर दिया ''जब बड़े–बड़े जमींदार हजूर की सेवा में हाजिर होगें तब यह दास भी शाही ड्योढी का चुंबन करेगा। मैं राजा नागरमल तथा अन्य लोगों को जिन्होंने मेरे पास शरण ली है कैसे भेज सकता हूँ''। इसी बीच जवाहरसिंह ने आक्रमण करती हुई एक अफगान टुकड़ी को परास्त कर उनके अनेक अश्व और सामान कब्जे में कर लिए। अहमदशाह अब्दाली को जब यह ज्ञात हुआ तो उसके क्रोध की सीमा नहीं रही, परन्तु बल्लभगढ़ में मराठा सरदार अंताजी मानकेश्वर, शमशेर बहादुर और राजकुमार जवाहरसिंह अहमदशाह अब्दाली के आक्रमण से बच निकले और अब्दाली को मामूली लूट से ही संतोष करना पड़ा। इसके उपरांत अहमदशाह अब्दाली ने मथुरा और उसके आस–पास के क्षेत्रों में लूट मचाई, किन्तु इसी बीच उसकी सेना में हैजा फैल जाने के कारण निराशा व हताशा छा गई सैनिक वापस लौटने की चर्चा करने लगे। अहमदशाह अब्दाली ने बिगड़ती स्थिति को भांपकर दिल्ली तथा मथुरा से लूटी धन सम्पदा लेकर अफगानिस्तान की राह पकड़ी।[5] सूरजमल दुर्रानी लुटेरों से सल्तनत व राष्ट्र की रक्षा करना चाहता था, परन्तु वह मराठों की आर्थिक मांग तथा दिल्ली साम्राज्य को विघटित करने की नीति से काफी असन्तुष्ट था वह मराठों में राष्ट्रीयता तथा हिन्दू एकता के अभाव से भी चिन्तित था सूरजमल को यह भी डर था कि यदि उसने मराठों का साथ निभाने की चेष्टा की तो हिन्दुस्तान के सभी राजपूत शासक, मुस्लिम अमीर–उमराव जो उनकी चौथ व खण्डनी की मांग से परेशान थे उसके विरोधी बन जायेंगे। इतने के बाद भी सूरजमल ने

मराठा सरदारों के लिए राष्ट्रीय एकता तथा साम्राज्य के हित में सहयोग देने का आश्वासन दिया। बापूजी महादेव ने रघुनाथ दादा, बाजीराव पेशवा को स्पष्ट शब्दों में लिखा–''सूरजमल मनसा–वाचा–कर्मणा मराठों के प्रति स्नेही है। वह सभी के साथ मिलकर अफगानों को हिन्दुस्तान से खदेड़ना चाहता है''[6] परन्तु मराठे जाटों की सहायता व अपनी रणनीति कुशलता में ईमानदार नहीं थे।

सरदेसाई के शब्दों में, पेशवा ने बिना एक क्षण विलम्ब के रघुनाथराव व होल्कर को नवम्बर, 1756 ई0 में दिल्ली की ओर प्रस्थान करने का आदेश दिया था। दुर्रानी तथा रघुनाथराव काबुल व पूना से एक साथ चले थे। यदि रघुनाथराव की गति उतनी ही द्रुत होती जितनी दुर्रानी की थी, तो संकट टल जाता या कम से कम उसकी प्रचण्डता कम की जा सकती थी। होल्कर की दुर्रानी से युद्ध करने की इच्छा नही थी। विदेशी संकट से सम्राट की रक्षा के लिए मराठा वचनबद्ध थे। अतः रघुनाथराव का यह कर्त्तव्य था कि वह शीघ्र ही दिल्ली पहुच जाए[7], परन्तु वह नही पहुॅचा। सूरजमल मराठों की राह देख रहा था। मराठों की अनुपस्थिति में जाट राजा ने निःसन्देह दुर्रानी का सफल कूटनीतिक प्रतिरोध किया। वास्तव में उसने ''ठहरो, देखो, समय निकालो'' के सिद्धान्त का पालन किया। जिसके कारण जाट राज्य के विरूद्ध सामरिक तथा धनहरण की नीति में अहमदशाह अब्दाली पूर्णतः असफल रहा और सूरजमल की शक्ति, प्रतिभा व धन का विनाश नहीं हो सका। रघुनाथराव की अकर्मण्यता की नीति ने दुर्रानी के सैन्य अभियानों का द्वार खोल दिया। साथ ही अब्दाली ने अपने बाद के सैन्य अभियानों के लिए मराठों की अदूरदर्शिता व कमजोरी

को उजागर किया। जाटों को भविष्य में तटस्थ रखने के प्रयास भी उसने किया।

अब्दाली का प्रत्यक्ष मुकाबला न करके मराठों ने उत्तर भारत की राजनीतिक व्यवस्था में अपने कमजोरियों को उजागर किया; जिसके कारण दुर्रानी के अभियानों में उनको कोई समर्थक नही मिल पाया, जिसका परिणाम मराठों के लिए बहुत ही विनाशकारी हुआ।

अहमदशाह अब्दाली मुश्किल से लाहौर ही पहुँचा था कि इमादुलमुल्क ने मराठों को दिल्ली आने का आमंत्रण दिया। रघुनाथ राव ने दिल्ली पर अपना अधिकार कर लिया। पंजाब पर चढ़ाई कर अब्दाली के पुत्र तैमूरशाह को वहाँ से खदेड़ दिया और अप्रैल, 1758 ई0 में लाहौर अपने अधिकार में ले लिया। दिल्ली में 5000 सैनिक तैनात कर दिये जिन्हें 13 लाख रूपये वार्षिक मिलते थे और सूरजमल से मैत्री पूर्ण समझौता किया। जिसके फलस्वरूप जाट राजा सूरजमल ने जो इलाके अपने राज्य में मिला लिए थे उनकी पुष्टि कर दी गई।[8]

जाट–मराठा मैत्री शुद्ध रूप से रक्षात्मक थी और विदेशी आक्रमणकारी के विरोध में की गई थी। इस अवधि में अनेक अवसरों पर इस जाट सरदार द्वारा अभिव्यक्त अनेक राजनीतिक विचार अत्यधिक प्रशंसनीय थे और यदि मराठा सरकार ने उनके अनुसार आचरण किया होता, तो हिन्दुस्तान में उनकी वास्तविक प्रभुता बहुत समय तक अटल रहती। जाट राजा सूरजमल के सुझाव थे–

1. नजीबुद्दौला को अलग कर दिया जाये तथा पंचमार्गी के रूप में कार्य कर रहे अन्य रूहेला सरदारों का दमन कर दिया जाए।
2. इमादुलमुल्क से पिंड छुड़ाकर सफदरजंग के पुत्र नवाब शुजाउद्दौला को वजीर पद दिया जाये क्योंकि वह धूर्त नजीबुद्दौला के विरूद्ध अत्यन्त उपयुक्त रहेगा।[9]

यदि इन सुझावों पर अमल किया गया होता तो भावी संकट न आते और इतिहास एक दूसरा ही मोड़ लेता परन्तु मल्हारराव होल्कर ने इसका विरोध किया बल्कि धूर्त नजीबुद्दौला को धर्म पुत्र बताकर उसका समर्थन किया।

इधर मुगल सम्राट आलमगीर द्वितीय इमादुलमुल्क से पिंड छुड़ाने के लिए अब्दाली को निमंत्रण दे रहा था जो पहले ही लाहौर से अपने पुत्र को निकाले जाने के कारण क्षुब्ध एवं क्रुद्ध था। अगस्त, 1759 ई0 में उसने सिंध पार लाहौर से मराठों द्वारा नियुक्त साबाजी सिन्धिया को खदेड़ दिया। इधर इमादुलमुल्क ने आलमगीर द्वितीय तथा इंतिजाम की नृशंसतापूर्वक हत्या करवा दी तथा 29 नवम्बर, 1759 ई0 को शाहजहाँ द्वितीय को राजसिंहासन पर बिठा दिया। अहमदशाह अब्दाली चुप बैठने वाला नहीं था। वह इस घटना से और अधिक क्रुद्ध हो गया। रूहेले सरदारों के सहयोग के साथ अवध के शुजाउद्दौला का समर्थन पाकर वह और भी शक्तिशाली हो गया। अहमदशाह अब्दाली ने 1760 ई0 में दत्ताजी सिन्धिया को हरा कर मार डाला। यद्यपि मराठे वीरतापूर्वक लड़े परन्तु इस शक्तिशाली संगठन से पार न पा सके। जनकोजी सिन्धिया बुरी तरह घायल हो गया। उसे और मराठा महिलाओं को जाट राजा सूरजमल का विश्वस्त रूपराम कटारी कुम्हेर ले गया। उनके साथ

ही हिन्दुस्तान के निर्लज्ज वजीर इमादुलमुल्क का रनिवास भी हो लिया।[10] यह घटना अत्यन्त ऐतिहासिक थी कि जाट राजा सूरजमल ने अपने कट्टर शत्रु इमादुलमुल्क और उसके परिवार को शरण दी। वैण्डल लिखता है कि ''इमादुलमुल्क तथा उसके परिवार को एक जमींदार जाट से एक भिखारी की तरह हाथ जोड़कर दया की भीख माँगने और उसके और उसके प्रयोजनों में शरण लेते तनिक भी लाज नहीं आयी।''[11] जनवरी 1760 ई0 के प्रथम सप्ताह में अहमदशाह अब्दाली दिल्ली पहुँचा और वहाँ सम्राट व वजीर शून्य राजधानी का स्वामी बन बैठा। मल्हारराव होल्कर को अहमदशाह अब्दाली ने सिकदंरा में बुरी तरह पराजित किया। पराजित मल्हारराव होल्कर आगरा होते हुए भरतपुर के निकट पहुँचा और राजा सूरजमल से प्रस्तुत संकट पर बातचीत की। इस वार्ता में मल्हारराव होल्कर ने राजा सूरजमल को ईमानदारीपूर्वक अपनी मैत्री का भरोसा दिलाया। इस वार्ता के विषय में पुरूषोत्तम महादेव हिंगणे लिखते है कि, ''मल्हारराव होल्कर ने बिल्व–पत्र एवं गंगा–जल हाथ में लेकर सूरजमल के साथ अपनी मित्रता की शपथ ली व रक्षा का आश्वासन दिया।''[12] मल्हारराव होल्कर ने भरतपुर का रास्ता पकड़ा। भावी संघर्ष के महत्व को समझते हुए अहमदशाह अब्दाली ने जाट राजा सूरजमल तथा उसकी शरण प्राप्त इमादुलमुल्क से वार्ता चलाई। राजा सूरजमल ने असमर्थता व्यक्त की और इमादुलमुल्क को भी स्वतंत्र कर दिया। इमादुलमुल्क अहमदशाह अब्दाली से मिल गया और उसने उसे वजीर बना दिया। सूरजमल की सोच थी कि मराठे अहमदशाह अब्दाली की अपेक्षाकृत कम बुरे हैं। उसके विचार से उत्तर भारत में मराठों की उपस्थिति एक बड़ी राजनीतिक आवश्यकता थी।[13] राजा सूरजमल की इस सोच ने तत्कालीन राजनीति को एक नई दिशा प्रदान की थी जिसका

आधार था विदेशी शत्रु के मुकाबले देशी शत्रु का पक्ष ग्रहण करना श्रेष्ठ है। किन्तु सम्भवतः नियति को यह स्वीकार नहीं था और अन्त में विचार–विभिन्नता के कारण सूरजमल ने स्वयं को मराठों से अलग कर लिया।

पानीपत के तृतीय युद्ध में जाट राजा सूरजमल ने सदाशिवराव भाऊ का साथ छोड़ दिया। जब मराठा सरदार सदाशिवराव भाऊ पानीपत के युद्ध क्षेत्र में उतरा तब उसके पक्ष में एक भी गैर–मराठा हिन्दू राजा या जागीरदार नहीं था। संभवतः इसके लिए स्वयं सदाशिवराव भाऊ की विवेकहीनता अधिक उत्तरदायी थी। इस विवाद में न पड़कर यह स्पष्ट कर देना पर्याप्त है कि 14 जनवरी, 1761 ई0 को मराठों की पराजय हुई और स्वयं सदाशिवराव भाऊ तथा अन्य महत्वपूर्ण सरदार वीरगति को प्राप्त हुए। यहाँ यह कहना गलत नहीं होगा कि अगर पानीपत के इस तृतीय युद्ध में जाट–मराठा सन्धि बनी रहती तो पानीपत के तृतीय युद्ध का निर्णय लाभदायक हो सकता था और इस स्थिति में इतिहास की दिशा अलग होती, किन्तु जाट–मराठा वैषम्य से पानीपत के युद्ध में मराठों की पराजय ही नहीं हुई बल्कि यह भी निश्चित हुआ कि भारतवर्ष पर मराठे राज्य नही करेंगे।[14] इसके अतिरिक्त इस युद्ध के मराठा प्रभावों का विश्लेषण इस प्रकार किया जा सकता है।

एक मत तो यह है कि युद्ध ने मराठा–शक्ति को अस्थायी रूप से ही क्षति पहुँचाई तथा मराठा–शक्ति की दृष्टि से इसके राजनीतिक परिणाम दूरगामी नहीं हुए। किन्तु दूसरा मत इसके पूर्णतः विपरीत है।

पानीपत की पराजय का मराठों पर सीमित व अस्थायी प्रभाव–

सर देसाई का मत है कि पानीपत की पराजय का मराठों पर विनाशकारी प्रभाव नहीं पड़ा। कुछ काल के पश्चात् ही उन्होंने अपनी खोई हुई शक्ति को पुनः प्राप्त कर लिया था। सर देसाई के शब्दों में, ''यह मान लेना कि पानीपत के तृतीय युद्ध के कारण उत्तर में मराठा शक्ति का सर्वनाश हो गया या इसके कारण भारत में मराठा साम्राज्य की नींव हिल गई, सर्वसाधारण में प्रचलित मिथ्या प्रवाद के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। वास्तव में इस युद्ध में मराठा शक्ति के भयानक जन–संहार के बावजूद किसी बात का कोई समुचित निर्णय न हो सका, परन्तु इसके दूरस्थ परिणामस्वरूप शासक जाति के दो प्रमुख नेताओं नाना फड़नवीस तथा महादजी सिन्धिया का उदय अवश्य हुआ, जो किसी प्रकार पानीपत की उस महान् विपत्ति से बच निकले थे। इन्होंने मराठा–सत्ता को पुनः उसके प्राचीन–वैभव तक पहुँचाने का प्रयत्न किया। फलस्वरूप पानीपत के कुछ दिन बाद ही मराठा सत्ता यथापूर्ण समृद्ध होने लगी। इसी प्रकार 40 वर्षों तक जब तक कि महादजी सिन्धिया की मृत्यु न हो गयी या 19वीं शताब्दी के आरम्भ में द्वितीय मराठा युद्ध द्वारा (1803 ई0) ब्रिटिश–प्रभुता की स्थापना न हो गयी, उसका उत्थान जारी रहा।'' पानीपत की विपत्ति वास्तव में प्रकृति का प्रकोप था, इससे धन और जन दोनों का ही नाश हुआ लेकिन फिर भी इसका कोई निर्णायक राजनीतिक परिणाम न निकला। यह कहना कि पानीपत की विपत्ति ने मराठों के प्रभुता के स्वप्न का अन्त कर दिया, परिस्थिति को गलत समझना है, जिसका उल्लेख समकालीन विश्वसनीय पत्रों में हैं।''[15]

मेजर इवान्स बैल भी सर देसाई के मत की पुष्टि करते हुए लिखते है, ''पानीपत का युद्ध मराठों के लिए अपूर्व–विजय तथा गौरव का विषय था। उन्होंने 'भारत भारतीयों के लिए है' की भावना से प्रेरित होकर युद्ध किया था, जबकि दिल्ली, अवध तथा दक्षिण के मुसलमान शासक इस युद्ध से अलग रहे तथा षड्यन्त्रों में व्यस्त रहे। यद्यपि मराठों की पराजय हुई तथापि विजयी अफगान वापस हो गये तथा फिर कभी उन्होंने भारत के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप करने का साहस नहीं किया।''[16]

डॉ0 सेन भी सर देसाई के मत का समर्थन करते हुए लिखते हैं, ''पानीपत के तृतीय–युद्ध ने मराठा–साम्राज्य को एक मरणान्तक धक्का नहीं पहुँचाया। इसने केवल इसके विस्तार को रोक दिया और भारत के भावी शासकों को आराम दिया, जिसकी उन्हें बंगाल में शक्ति को संगठित करने में आवश्यकता थी।''[17]

पानीपत युद्ध के महत्व पर प्रकाश डालते हुए सर देसाई लिखते हैं, ''इस घटना ने मराठा आकाँक्षाओं को हमेशा के लिए पद–दलित करने के स्थान पर उनको नवीन बल तथा उत्साह प्रदान किया, जैसा कि भारतीय महाद्वीप पर अपनी प्रभुता स्थापित करने के उनके प्रयत्नों से ज्ञात होता है; यद्यपि पानीपत के युद्ध में उनके साहस की कठिन–परीक्षा हो चुकी थी और जिसमें वे अति शक्तिशाली सिद्ध हुए थे। घिरे हुए शिविर के अति दुःख तथा क्लेशमय जीवन के बावजूद भी उनमें तनिक भी निराशा, पराजय तथा विद्रोह की भावना पैदा न हुई। भाऊ साहब के साहस से प्रत्येक व्यक्ति को अपनी अपूर्व वीरता दिखाने की प्रेरणा प्राप्त हुई तथा इस अन्तिम पराजय के बाद भी

लोगों ने इस घटना का इस प्रकार वर्णन किया जैसे कि वे महान् योद्धा थे। वास्तव में यदि भारतीय परिस्थिति के इन स्पष्ट राजनीतिक प्रश्नों को दृष्टि से दूर रखा जाये तो स्वयं मराठों को पानीपत के युद्ध का अभूतपूर्व अनुभव प्राप्त हुआ तथा उनके राष्ट्रीय गर्व तथा भावुकता में अत्यधिक वृद्धि हो गई। उनकी भावनाओं को कुचलने के स्थान पर इस विपत्ति ने उनको और अधिक बल प्रदान किया, क्योंकि किसी भी राष्ट्र की प्रगति के पथ पर इस प्रकार के उत्थान–पतन अवश्यम्भावी हैं। वास्तव में दत्ताजी, जनकोजी, इब्राहीम, सदाशिवराव जैसे वीर सेनानियों ने व्यर्थ में ही अपने प्राण नहीं गँवाये थे। वे अपने राष्ट्र के भाग्य पटल पर अपनी स्मृति के चिह्न छोड़ गये थे तथा इसको समुन्नत–मार्ग पर अग्रसर होने के लिए तैयार कर गये थे, जैसा कि युवक–पेशवा माधवराव के सद्प्रयत्नों से ज्ञात होता है।''[18]

पानीपत की पराजय का मराठा–शक्ति पर स्थायी व घातक प्रभाव–

इस मत के प्रतिपादक मुख्य रूप से श्री सरकार हैं। वह मराठा इतिहासकारों के उपर्युक्त निष्कर्षों से वह 'सहमत' नहीं हैं। वह इन्हें 'निराधार', 'देशभक्तिपूर्ण दावे' मानते हैं।

सर जे0एन0सरकार की मान्यता है कि पानीपत का तीसरा युद्ध एक निर्णायक युद्ध था। इस युद्ध में मराठों की बुरी तरह पराजय हुई। इससे मराठा शक्ति को गहरा आघात पहुँचा। इस युद्ध में लगभग 75,000 मराठे खेत रहे और जो युद्ध के मैदान से किसी प्रकार बच निकले उनकी दशा भी अत्यन्त दयनीय थी। मराठा शक्ति इस आघात के कारण अनेक वर्षों तक नहीं सम्भल सकी। पेशवा को काफी समय तक युद्ध में मरने वाले सैनिकों तथा सेनानायकों

के सम्बन्ध में विश्वसनीय सूचना भी प्राप्त नहीं हो सकी। कहा जाता है कि सम्पूर्ण महाराष्ट्र में शायद ही कोई ऐसा सैनिक परिवार बचा हो, जिसने पानीपत के इस पवित्र संघर्ष में अपना एक सदस्य न खोया हो।

सर जदुनाथ सरकार लिखते हैं, ''मराठा–लेखकों में यह बात साधारण रूप से प्रचलित है कि वे पानीपत की इस लड़ाई के परिणामों को महत्व नहीं देते, परन्तु इतिहास के पक्षपातरहित अध्ययन से ज्ञात होगा कि मराठों का यह जोरदार दावा कितना निर्मूल है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि मराठा सेना ने निर्वासित मुगल–सम्राट को 1772 ई0 में अपने पूर्वजों के सिंहासन पर फिर से बिठा दिया था, परन्तु वे उस समय न तो राज्य–निर्माता बने और न मुगल–साम्राज्य के वास्तविक शासक ही, वरन् उनकी स्थिति तो नाममात्र के मन्त्रियों तथा सेनापतियों जैसी ही थी। इस प्रकार गौरवपूर्ण पद तो केवल 1789 ई0 में महादजी सिन्धिया और 1803 में अंग्रेज ही प्राप्त कर पाये थे।''[19]

सिडनी ओवल लिखता है, ''परम्परा, आख्यान, वाद्य और संगीत चिरकाल तक इस विलाप को जारी रखेंगे और पानीपत के घातक क्षेत्र में, जहाँ कि महाराष्ट्र के भाले काँप कर गिर गये थे और उसकी ढालें टूट गई थीं, प्रबल संघर्ष तथा भयानक संहार के गीतों को बेटे पूर्वजों से सुनते रहेंगे।''

एलफिन्सटन सर जदुनाथ सरकार के मत का समर्थन करते हुए लिखते हैं, ''कोई भी पराजय इतनी पूर्ण नहीं हुई और कोई भी आपत्ति ऐसी नहीं आयी, जिसने इतना भय फैलाया हो। सम्पूर्ण मराठा जाति में दु:ख और निराशा छा गई। अधिकांश को अपने सम्बन्धियों की मृत्यु का दारूण दु:ख था, किन्तु

सेना के इस भयंकर विनाश को सारी जाति अपने जातीय गौरव पर अत्यन्त घातक प्रहार समझती थी।''[20]

इस युद्ध में सदाशिवराव भाऊ, जसवन्तराव पंवार, तुकोजी सिन्धिया एवं इब्राहिम गार्दी जैसे बड़े–बड़े महारथी रणक्षेत्र में काम आये, जिसके कारण बालाजी का हृदय टूट गया और 23 जून, 1761 ई0 को वह परलोक सिधार गया।

एलफिन्सटन लिखता है, ''पेशवा इस धक्के से फिर कभी उठ नहीं सका। वह धीरे–धीरे सीमा से पूना की ओर पीछे हटता गया और वहाँ नगर के निकट ही अपने बनाये हुए एक मन्दिर में पहुँच कर मर गया।''[21]

पेशवा की मृत्यु के बाद उसके परिवार में ही षड्यन्त्रों का एक ऐसा चक्र चला, जिससे मराठा संघ छिन्न–भिन्न होने लगा। मराठों की इस आपसी फूट के कारण उत्तरी भारत में उनकी प्रगति रूक गई। निस्सन्देह सिन्धिया कुछ समय तक मुगल बादशाह का संरक्षक बन गया, परन्तु उत्तरी भारत में मराठों का स्थायी प्रभाव स्थापित न हो सका।

इस युद्ध के परिणामस्वरूप महाराष्ट्र में ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न हो गई, जिनसे पेशवा–परिवार द्वेष, वैमनस्य और गृह–कलह की आग में झुलसने लगा। इस युद्ध के बाद कुख्यात रघुनाथराव को अपनी दुर्भावनापूर्ण महत्वाकांक्षा पूरी करने का अवसर मिल गया। सर जदुनाथ सरकार लिखते हैं, ''पेशवा बालाजी बाजीराव सहित सभी महान् मराठा सेनानायकों को हटाते हुए इस युद्ध ने राघोवा, जो कि मराठा–इतिहास में सबसे बदनाम चरित्र था; के

लिए सरलता से मार्ग खोल दिया। अन्य हानियों की तो समय पूर्ति कर सकता था परन्तु मराठों की यह सबसे बड़ी हानि थी, जो उन्हें पानीपत के युद्ध के कारण उठानी पड़ी थी।''[22]

इस युद्ध के पश्चात् उत्तर–पश्चिमी भारत के एक बहुत बड़े भाग (पंजाब, मुल्तान एवं दिल्ली आदि) पर मुसलमानों का दृढ़ अधिकार हो गया, परन्तु अहमदशाह इस विजय का लाभ उठाये बिना ही स्वदेश चला गया और इसके बाद उसने फिर कभी भारत के मामलों में कोई रूचि नहीं ली। पानीपत के युद्ध से रोगग्रस्त लड़खड़ाते मुगल साम्राज्य का अन्त हो गया और मराठों के सम्पूर्ण भारत में साम्राज्य स्थापित करने का सपना चूर–चूर कर दिया। इस युद्ध के बाद मराठों ने पंजाब पर पुनः अधिकार करने का साहस नहीं किया। इस पर कालान्तर में सिक्खों का अधिकार हो गया।

पानीपत के युद्ध से मराठा सैनिक शक्ति को जबरदस्त धक्का लगा।

सर जदुनाथ सरकार लिखते हैं, ''यह जातीय विनाश था और इसका स्वरूप वैसा ही था, जैसा स्कॉटिश इतिहास में फ्लाडल क्षेत्र का था। महाराष्ट्र में कोई भी घर ऐसा नहीं था, जिसमें किसी न किसी व्यक्ति का शोक न मनाया गया हो। अनेक घर तो ऐसे थे, जिनके गृहस्वामी मारे गये थे और नेताओं की पीढ़ी की पीढ़ी तलवार के एक वार से मौत के घाट उतार दी गई थी।''[23]

इस युद्ध में पराजय के बाद मराठा शक्ति अजेय नहीं रही। इसके बाद मराठे काफी समय तक इस पराजय के धक्कों से नहीं सम्भल सके। उनकी

पराजय ने यह स्पष्ट कर दिया कि मराठा सैनिक शक्ति अजेय नहीं और उसकी मित्रता भी अधिक उपयोगी नहीं। सरकार के शब्दों में ''1761 ई0 में वे अपनी ही रक्षा नहीं कर सके तो फिर औरों की क्या कर सकते थे।''

डॉ0 ए0एल0 श्रीवास्तव का कथन है, ''मराठा सेनाओं, जो अब तक अजेय समझी जाती थीं; सेना सम्बन्धी तथा राजनीति सम्बन्धी प्रसिद्धि समाप्त हो गई। 1761 ई0 के पश्चात् भारतीयों ने यह नहीं सोचा कि मराठे मित्रता के योग्य हैं क्योंकि पिछले चार वर्षों में उन्होंने जो कुछ किया था, उससे वे अपनी रक्षा करने योग्य नहीं रह गये थे, आश्रितों की रक्षा का तो कहना ही क्या।''[24]

मराठों की शक्ति क्षीण होने से अंग्रेजों को अपनी शक्ति दृढ़ करने का अवसर मिल गया। जब मराठों ने उत्तर में पुनः अपना प्रभाव स्थापित करने का प्रयास किया, तो उन्हें अंग्रेजों से संघर्ष करना पड़ा, जिसमें अन्ततोगत्वा वे निर्णायक रूप से पराजित हुए और भारत में अंग्रेजों का राज्य स्थापित हो गया।

18वीं शताब्दी के मध्य में देश में दो प्रमुख शक्तियाँ थीं–पतनशील मुसलमान और उन्नतिशील मराठे। ये दोनों ने एक–दूसरे को इतना दुर्बल बना दिया था कि राजनैतिक क्षेत्र को एक तीसरी–शक्ति अर्थात् अंग्रेजों के लिए खुला छोड़ दिया था।'' सर देसाई लिखते हैं, ''यह एक महत्वपूर्ण बात है कि जब कुरूक्षेत्र की इस प्राचीन युद्ध–भूमि में मराठे तथा मुसलमान घोर–संघर्ष में व्यस्त थे, भारत में ब्रिटिश साम्राजय का प्रथम संस्थापक क्लाइव इंग्लैण्ड जा रहा था। वहाँ जाकर उसका उद्देश्य उस समय के महान् लोकनायक प्रधानमंत्री लार्ड चैथम को भारतीय साम्राज्य के अपने स्वप्नों की सम्भावनाओं से परिचित

कराना था। वास्तव में पानीपत की इस घटना ने भारत में प्रभुता के लिए होने वाले संघर्ष में एक नये भागीदार को अप्रत्यक्ष रूप से प्रवेश दे दिया, जो यथार्थ में इस ऐतिहासिक घटना का प्रत्यक्ष परिणाम है। इसी कारण यह भारत के इतिहास में एक युगान्तकारी घटना समझी जाती है।''[25]

पानीपत में मराठों के पराजय पर निष्कर्षतः यह कह सकते है कि इस युद्ध का मराठा–साम्राज्य पर घातक प्रहार नही पड़ा बल्कि भारत में मराठा प्रसार को रोका, जिससे क्षेत्रीय शक्तियों व अंग्रेजों की अपनी स्थिति दृढ़ करने का अवसर मिला। अपनी गलतियों का मूल्यांकन मराठों ने किया होता तो प्रत्यक्ष रूप से यह उनके लिए लाभकारी व इतिहास के लिए कुछ और ही होता।

पानीपत के युद्ध से उत्पन्न अव्यवस्था का लाभ उठाकर जाटों ने अपना ध्यान राज्य विस्तार पर केन्द्रित कर दिया। सूरजमल ने शीघ्र ही आगरा पर विजय प्राप्त की। उसने अपना राज्य उत्तर की ओर दिल्ली से 20 मील दूर सराय–ख्वाजा–बसन्त तक बढ़ा लिया। दिल्ली के पश्चिम में वह अपने पुत्र जवाहरसिंह के लिए एक छोटा पृथक राज्य स्थापित करने में जुटा और एक सेना के साथ जवाहरसिंह को हरियाणा प्रदेश विजय करने के लिए भेजा। दूसरी सेना नाहरसिंह के साथ दोआब में और साथ ही पूर्व में रूहेलों की गतिविधियों पर निरीक्षण हेतु भेज दी। जवाहरसिंह ने फर्रूखनगर पर आक्रमण किया। नजीबुद्दौला नबाव मुसावी खाँ का आश्रय दाता था। अतः उसने सूरजमल के लिए लिखा है कि, ''मुसावी खाँ उसके संरक्षण में है, अतः उसे न सताया जाये। सूरजमल ने उत्तर दिया कि शत्रुओं को छिपाने वाले व्यक्ति को

अवश्य दण्ड दिया जायेगा।''[26] कुछ संघर्ष के उपरान्त विनाश निश्चित देखकर मुसावी खाँ ने सूरजमल को लिखा कि यदि गंगा जल उठाकर सूरजमल उसे आश्वासन दे कि बाहर निकलकर चले जाने पर सूरजमल उस पर आक्रमण नहीं करेगा तो वह दुर्ग खाली कर देगा। सूरजमल ने मुसावी खाँ की माँग स्वीकार कर ली परन्तु जब मुसावी खाँ परिवार सहित किले से बाहर निकला तो उसे बन्दी बना लिया गया और डीग के किले में भेज दिया। नजीबुद्दौला ने पत्र लिखकर विरोध प्रकट किया इसे अनसुना कर जवाहरसिंह को फर्रूखनगर छोड़कर सूरजमल नजीबुद्दौला से निपटने के लिए सेना लेकर बढ़ा। हिंगन के पास युद्ध हुआ और सूरजमल 25 दिसम्बर, 1763 ई0 को मारा गया। उसकी मृत्यु के विषय में भिन्न मत हैं पर जाट जाति की आँख और ज्योति गत पन्द्रह वर्षों से हिन्दुस्तान का सबसे दुधुर्ष राजा अपने काम को अधूरा छोड़कर जीवन के रंगमंच से लुप्त हो गया।[27]

सूरजमल का पुत्र जवाहरसिंह सितम्बर, 1763 ई0 में डीग में राजगद्दी पर बैठा। नजीबुद्दौला से अपने पिता की मृत्यु का बदला लेने के लिए जवाहरसिंह को मराठा सरदार मल्हारराव होल्कर से सहायता लेनी पड़ी। इस जाट–मराठा सम्बन्ध के अधोलिखित प्रभाव हुए।

1. मल्हारराव होल्कर के सक्रिय सहयोग के अभाव में जाट राजा जवाहरसिंह को नजीबुद्दौला से समझौता करना पड़ा।
2. जवाहरसिंह ने मल्हारराव होल्कर को वायदे के अनुसार पूर्ण रकम अदा नहीं की जिससे दोनों शक्तियों के मध्य पुनः मन–मुटाव हो गया।

3. मल्हारराव होल्कर ने जवाहरसिंह के प्रतिद्वन्द्वी नाहरसिंह को समर्थन दिया।
4. जवाहरसिंह ने सिक्खों की सहायता से मल्हारराव होल्कर के सेनानायकों को धौलपुर के संघर्ष में परास्त किया।
5. जाटों की इस सफलता से पेशवा ने रघुनाथ राव को 60 हजार घुड़सवार और 100 तोपें देकर भेजा।

गोहद के राणा के विरूद्ध रघुनाथराव का संघर्ष चल ही रहा था कि अहमदशाह अब्दाली के आगमन की सूचना से पुनः जाट–मराठा सन्धि हो गई। यह सन्धि 9–10 दिसम्बर, 1766 ई0 में हुई जिसकी शर्ते निम्नलिखित थीं–

1. भरतपुर में बन्दी सब मराठा सैनिकों को मुक्त कर दिया जावे।
2. जवाहरसिंह के राज्य में लगा हुआ इलाका जो वस्तुतः मराठों के अधीन या पूर्णतया जवाहरसिंह को दे दिया जाये। इसके बदले में जवाहरसिंह को पाँच लाख रूपये मराठों को देने होगें।
3. मल्हारराव होल्कर के दिल्ली अभियान की बाकी रही राशि का भुगतान किया जावे तब आगे के लिए नया समझौता किया जायेगा।[28]

अहमदशाह अब्दाली के दिल्ली पर संभावित आक्रमण से भयभीत होकर की गई जाट–मराठा सन्धि अल्पकालीन युद्ध विराम सन्धि से अधिक कुछ नहीं थी।[29] 19 जून, 1767 ई0 को पंजाब से ही अहमदशाह अब्दाली वापस अपने देश को लौट गया तब जवाहरसिंह ने अपनी मराठा विरोधी युद्ध योजना को कार्यान्वित करना पुनः प्रारम्भ कर दिया।[30] शीघ्र ही कुछ ही महीनों में मराठा संवाददाता के शब्दों में कालपी प्रान्त के भदावर, तंवरधार, सिकरवार क्षेत्रों में

सब ही स्थानों पर जाट राजा जवाहरसिंह का अधिकार हो गया केवल ग्वालियर और झांसी ही हमारे (मराठों) अधिकार में रह गये हैं।[31] जवाहरसिंह की निरन्तर विजयों से पूना में पेशवा के सम्मुख यह समस्या उत्पन्न कर दी कि उत्तर में मराठा शक्ति को बनाये रखने के लिए शक्तिशाली जाट राजा जवाहरसिंह से किसी प्रकार समझौता कर लिया जाय।[32] पेशवा के आदेशानुसार सितम्बर, 1767 ई0 के आरंभ में दोनों पक्षों में सन्धि हो गई। जिसका प्रभाव यह हुआ कि विट्ठलराव के जिंगनी और जितलवार परगने तथा महादजी कासी के अधिकार वाले तंवरधार और सिकरवार क्षेत्र जवाहरसिंह को सौंप दिये गये। जवाहरसिंह चम्बल पार कर वापिस लौट गया। जवाहरसिंह के पुष्कर (अजमेर) अभियान के समय मराठों ने कुछ क्षेत्र पुनः वापिस ले लिये थे परन्तु जवाहरसिंह ने मई–जून, 1768 ई0 में पुनः अपना सिक्का जमाया। आगे कुछ और कार्यवाही होती कि अगस्त, 1768 ई0 के प्रथम सप्ताह के अंत में लगभग जवाहरसिंह की हत्या कर दी गई।[33]

अन्त में यह कहना तर्क संगत होगा कि जाट–मराठा सम्बन्धों में मराठों ने जाटों की शक्ति का सदैव कमतर अनुमान लगाया। इस कारण से बेहतर सम्बन्ध निर्धारित नही हो सके जिससे मराठों को उत्तर भारत के अभियानों में जाटों से निरन्तर चुनौती मिली। उनके विश्वस्त मित्र जो जाट स्वयं हो सकते थे मराठों के रणनीति व अदूरदर्शितापूर्ण दृष्टि ने दोनों को कभी एक नहीं होने दिया। कभी समझौता कभी युद्ध के बीच दोनों पक्षों की शक्तियों का क्षरण होता रहा जिससे परिस्थितियां अंग्रेजों के अनुकूल होती गयी।

****

सन्दर्भ

1. ता0 अहमदशाही, पृ0 24 ब
2. नटवरसिंह–महाराजा सूरजमल, 1707 ई0–1763 ई0 (हिन्दी अनुवादक–वीरजी) प्रथम संस्करण, पृ0 78
   के0आर0 कानूनगो–हिस्ट्री आफ द जाट्स, पृ0 108
3. उपेन्द्र नाथ शर्मा–मराठों का नवीन इतिहास, भाग–2, पृ0 303
4. जदुनाथ सरकार–फाल ऑफ द बुगल एम्पायर, पृ0 80
5. नटवरसिंह–महाराजा सूरजमल, 1707 ई0–1763 ई0 (हिन्दी अनुवादक–वीरजी) प्रथम संस्करण, पृ0 78
6. हिगणे जि0 1 लेख 195
7. सरदेसाई–मराठों का नवीन इतिहास भाग–2, पृ0 503, 505।
8. नटवरसिंह–महाराजा सूरजमल, 1707 ई0–1763 ई0 (हिन्दी अनुवादक–वीरजी) प्रथम संस्करण, पृ0 99
9. नटवरसिंह–महाराजा सूरजमल, 1707 ई0–1763 ई0 (हिन्दी अनुवादक–वीरजी) प्रथम संस्करण, पृ0 100
10. के0आर0 कानूनगो–हिस्ट्री आफ द जाट्स, पृ0 112
11. नटवरसिंह–महाराजा सूरजमल, 1707 ई0–1763 ई0 (हिन्दी अनुवादक–वीरजी) प्रथम संस्करण, पृ0 104
12. पेशवा दफ्तर II पत्र 121
13. के0आर0 कानूनगो–हिस्ट्री आफ द जाट्स, पृ0 116–117
14. एस0आर0 शर्मा–भारत में मुगल साम्राज्य, पृ0 482

15. जी0एस0 सरदेसाई–मराठों का नवीन इतिहास, भाग–दो, पृ0 452–453
16. एस0एल0 नागौरी व कान्ता नागौरी–मराठों का इतिहास, पृ0 133
17. वही, पृ0 133
18. वही, पृ0 454
19. जदुनाथ सरकार : मुगल साम्राज्य का पतन, भाग दो, पृ0 220
20. एस0एल0 नागौरी व कान्ता नागौरी–मराठों का इतिहास, पृ0 133
21. वही, पृ0 134
22. जदुनाथ सरकार : मुगल साम्राज्य का पतन, भाग दो, पृ0 220
23. एस0एल0 नागौरी व कान्ता नागौरी–मराठों का इतिहास, पृ0 133
24. वही, पृ0 136
25. जी0एस0 सरदेसाई–मराठों का नवीन इतिहास, भाग–दो, पृ0 452–453
26. वैण्डल–एन एकाउण्ट ऑफ दी जाट किगड़म, पृ0 88–89
27. के0 आर0 कानूनगो–हिस्ट्री ऑफ द जाट्स, पृ0 153
28. जदुनाथ सरकार–फाल ऑफ द मुगल एम्पायर खण्ड 2, पृ0 345–346
29. मनोहरसिंह राणावत–भरतपुर महाराजा जवाहरसिंह जाट, पृ0 65
30. के0 आर0 कानूनगो–हिस्ट्री ऑफ द जाट्स, पृ0 191–192
31. जदुनाथ सरकार–फाल ऑफ द मुगल एम्पायर खण्ड 2, पृ0 347–348
32. मनोहरसिंह राणावत–भरतपुर महाराजा जवाहरसिंह जाट, पृ0 68
33. जदुनाथ सरकार–फाल ऑफ द मुगल एम्पायर खण्ड 2, पृ0 351

****

उपसंहार

मुगल साम्राज्य का केन्द्रीय ढ़ाँचा अपने विरोधाभास के कारण 18वीं शताब्दी के आरम्भ से ही टूटने लगा था इसकी सैनिक तथा सांस्कृतिक उपलब्धियाँ जो भी रही हों, परन्तु मुगल सम्राट देश की विभिन्न जातियों में एक राष्ट्र की भावना जगाने तथा सामूहिक प्राण उत्पन्न करने में पूर्णतया असफल रहे। विद्रोह तथा द्रोह के उदाहरण तो मुगल साम्राज्य में उत्कृष्टतम काल से ही विद्यमान थे परन्तु 18वीं शताब्दी में उन्होंने एक भयानक रूप धारण कर लिया। सम्राट अपने शक्तिशाली, षड्यंत्रकारी तथा स्वार्थी अभिजात वर्ग के हाथों की कठपुतलियाँ बन गए। शक्ति के भूखे बंगाल, अवध तथा दक्कन के सूबेदार लगभग स्वतंत्र हो चुके थे अठारहवीं सदी में इन राज्यों का उदय राजव्यवस्था के पतन की बजाय उसका रूपांतरण था। यह शक्ति के विकेन्द्रीकरण का सूचक था, न कि शक्ति के शून्य या राजनीतिक अव्यवस्था का।

मुगल साम्राज्य के शिथिल हो रहे राजनैतिक ढ़ाचे व कमजोर सैन्य व्यवस्था ने भारत में एक प्रकार से शक्तियों के विकेन्द्रीकरण की प्रक्रिया शुरू की, जिससे महत्वाकांक्षी सूबेदार व प्रादेशिक सरदारों ने अर्द्धस्वतंत्र अथवा स्वतंत्र राज्यों की नींव रखी; जिसमें अवध, दक्कन, बंगाल, राजपूत राज्य, सिख, बंगश पठान के राज्य शामिल थे। इन्हीं परिस्थितियों में पश्चिमोत्तर सीमापार के साहसी वीरों को भारत पर पुनः आक्रमण करने की प्रेरणा मिली। भारत में अपने आन्तरिक तथा बाहरी शत्रुओं के कारण स्थिति बहुत गम्भीर हो गई। जिससे राजनीतिक अव्यवस्था बढ़ गई और मुगल साम्राज्य का पतन हो

गया। 18वीं शताब्दी के प्रथम चरणों में मराठों का दक्षिण और उत्तर दोनों दिशाओं में प्रसार हुआ। इस नवीन मराठा साम्राज्यवाद के प्रवर्तक पेशवा लोग थे जिन्होंने उत्तर भारत की राजनीतिक अव्यवस्था का लाभ उठा अपने विस्तार को तेज किया। इस राजनीतिक प्रतिद्वन्दिता में जाटों का उत्कर्ष भी हो रहा था जो औरंगजेब के काल से विद्रोहरत रहे। जाटों को सूरजमल जाट के रूप में सर्वमान्य नेता मिला जिसने भरतपुर राज्य की नींव रखीं। अपने क्षेत्र विस्तार के क्रम में जाटों का मुकाबला अब मराठों से प्रारम्भ हुआ जिसने उत्तर भारतीय राजनीति में दूरगामी परिणाम छोड़े।

पेशवा काल में मराठों को उत्तर भारत में प्रवेश का प्रत्यक्ष मौका 1719 ई0 में मिला, जब मुगल बादशाह की ओर से सैयद हुसैन अली ने मराठों से सन्धि की। इस सन्धि के अनुसार मुगल बादशाह ने शाहू को महाराष्ट्र व उसके द्वारा विजित प्रदेशों का स्वामी, दक्षिण भारत के छः सूबों से चौथ और सरदेशमुखी वसूलने का अधिकार और उन सूबों में शान्ति स्थापित करने का उत्तरदायित्व देना स्वीकार कर लिया। इस सन्धि से अप्रत्यक्षः रूप से मराठे दक्षिण भारत के सम्प्रभु बन गये। चौथ एवं सरदेशमुखी वसूलने के अधिकार ने उन्हें अपने राज्य को विस्तृत करने का अवसर दिया। इस प्रकार मराठे मुगल दरबार और उत्तर भारत की राजनीति में प्रत्यक्षः भाग लेने लगे।

अठाहरवीं सदी के आरम्भ में पेशवा बालाजी विश्वनाथ ने शाहू और उसके सरदारों के मध्य राजस्व विभाजन के एक तरीके का सूत्रपात किया। इस व्यवस्था में चौथ और सरदेशमुखी की वसूली की पूरी जिम्मेदारी मराठा सरदारों को सौप दी गई। इन वसूलियों का एक निर्धारित हिस्सा राजा को

देना था, जो पूरी सरदेशमुखी और चौथ का 34 प्रतिशत था। इस व्यवस्था ने पेशवा के नेतृत्व में मराठा सरदारों को मुगल प्रदेशों को लूटने और रौदने का और अधिक कारगर कारण मिल गया। जिससे मराठों के बीच कारगर राजनीतिक एकता अधिकाधिक परिणाम में पेशवागिरी की संस्था पर आधारित होती चली गई। इस काल में यह संस्था मराठा राजनीति का केन्द्र बिन्दु बन गई। पेशवा पद पर बाजीराव के आसीन होने से मराठा आन्दोलन का चरित्र रक्षात्मक से बदल कर आक्रामक हो गया। राष्ट्रीय अस्तित्व की रक्षा के चरित्र से उसने साम्राज्य निर्माता का रूप धारण कर लिया। बाजीराव ने मुगल साम्राज्य की दुर्बल संकटपूर्ण स्थिति, मुगल शासकों की अयोग्यता व उत्तर भारत की समृद्ध आर्थिक स्थिति का हवाला देकर मराठा सरदारों में लूट की प्रवृत्ति को जगाने की कोशिश के संदर्भ में उत्तर भारत में मराठा शक्ति के प्रसार का निश्चय किया। बाजीराव ने अपने स्वामी शाहू से प्रस्ताव किया, ''हमें मुरझाते हुए वृक्ष की जड़ों पर प्रहार करना चाहिए। शाखाए अपने आप ही गिर पड़ेंगी। इस प्रकार मराठों का झण्डा कृष्णा से अटक तक फहराना चाहिए।''

पेशवा बाजीराव ने उत्तर की ओर बढ़ने व मुरझाते हुए मुगल पेड़ पर प्रहार करने की नीति अपना कर अपने नये मराठा सरदार नियुक्त किये, जैसे–सिन्धिया, होल्कर, गायकवाड़ तथा भौंसले। उत्तर भारत में मराठों का विस्तार व मराठा सरदारों की सफलता से छत्रपति का महत्व धीरे–धीरे कम होता गया। जब तक पेशवा का नेतृत्व प्रभावशाली रहा ये नेता एक निश्चित नीति का अनुसरण करते रहे और मराठा प्रभाव को दृढ़ बनाये रखा।

उत्तर भारत में दिल्ली, मथुरा व आगरा के समीपवर्ती क्षेत्रों में कृषि कार्यरत जाटों ने औरंगजेब की नीति के विरूद्ध विद्रोह कर दिया, धीरे–धीरे यह जाटों का विद्रोह जाट राज्य की स्थापना तक पहुँचा दिया। राज्य निर्माण की प्रक्रिया में जाटों का प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष सहयोग सवाई जयसिंह ने किया, जिसने सम्पत्ति व भूमि दोनों का अधिकार जाटों को दिया। दिल्ली साम्राज्य की आन्तरिक कमजोरियों का लाभ उठा जाटों ने डीग, भरतपुर, कुम्हेर और वैर के दुर्गो का निर्माण कराया व उनका दुर्गीकरण किया। अपने राज्यों के निर्माण व विस्तार के क्रम में मराठों के प्रवेश को रोका और अपनी स्थिति दृढ़ कर ली। जाटों ने मराठों से युद्ध व सन्धि दोनों परस्पर नीतियों का पालन किया। जिससे न केवल जाटों ने उत्तर भारत में अपने सीमावर्ती क्षेत्रों का विस्तार किया बल्कि मराठों को प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष दोनों रूपों में चुनौती भी दी। जिससे मराठों का उत्तर भारत अभियान बेहतर प्रभावी न हो सका।

राजस्थान के लगभग प्रत्येक बड़े राज्यों में आन्तरिक झगड़े और सामन्ती गुटबन्दी बहुत प्रभावशाली हो गई थी राज्यों के राजपूत शासकों के परस्पर संदेह, विरोधी महत्वाकांक्षाएँ सामन्ती प्रतिस्पर्द्धा और उत्तराधिकार के विवादों ने उन्हें किसी ठोस नीति को अपनाने से दूर रखा। जिससे राजपूत राज्यों की अराजक स्थिति ने मराठों को राजपूत राज्यों में हस्तक्षेप को बाध्य किया। जाटों की युद्ध में भूमि मुलाकात मराठों से जयपुर के उत्तराधिकारी युद्ध में ही हुई। सन् 1743 ई0 में जयपुर नरेश सवाई जयसिंह की मृत्यु हो गई। उसकी मृत्यु के पश्चात् ज्येष्ठ पुत्र ईश्वरी सिंह और माधोसिंह में भातृघाती युद्ध हुआ। मराठे माधोसिंह की प्रार्थना पर समर्थन को तैयार हो गये। भरतपुर के सिनसिनवारों

ने जयसिंह को दिये अपने वचन का निर्वाह करने के लिए ईश्वरी सिंह का साथ दिया। जिसने ईश्वरी सिंह की विजय हुई। ईश्वरी सिंह ने बराबरी का सम्मान देते हुए सूरजमल का स्वागत किया।

मराठों ने मुगल सम्राट की ओर से भरतपुर के शक्तिशाली जाट राजा सूरजमल से झगड़ा मोल लेकर एक भयंकर भूल की। सूरजमल के काफी प्रयत्न करने पर भी मराठों ने सन्धि करने से इन्कार कर दिया और कुम्भेर के किले का घेरा डाल दिया। 1754 ई0 में कुम्भेर के घेरे में मराठों और जाटों का सीधा संघर्ष हुआ। लगभग चार माह तक घेरा रहने के बाद जाटों की वीरता एवं कूटनीति के आगे मराठों को असफल होकर घेरा उठाना पड़ा।

रघुनाथराव मात्र 2 लाख रूपये लेकर जाट प्रदेश को छोड़कर वापिस लौट गया। मल्हार राव जो इस युद्ध में अपने पुत्र खाण्डेराव को खो चुका था वह भी इमादुलमुल्क के साथ दिल्ली चला गया। जाट नरेश सूरजमल के प्रभाव में वृद्धि हुई। रघुनाथ राव से किया गया यह समझौता 1756 ई0 तक चला। तब तक जाटों ने आगरा क्षेत्र का काफी इलाका अपने कब्जे में कर लिया।

सन् 1756–57 में मराठा सरदार रघुनाथ राव की अनुपस्थिति में अहमदशाह ने न केवल दिल्ली को लूटा बल्कि अपनी लूटपाट का दायरा मथुरा, गोकुल और वृंदावन तक फैला दिया। मराठों की गैर हाजिरी में इमाद–उल–मुल्क को अब्दाली से समझौता करना पड़ा, जो नजीबुद्दौला को मीर बख्शी और व्यवहारतः दिल्ली दरबार में अपना प्रतिनिधि बनाकर लौट गया। अब्दाली को जिस एक मात्रा प्रतिरोध का सामना करना पड़ा वह था

जाट राजा का। सूरजमल डीग, भरतपुर आदि के अपने शक्तिशाली किलों में दृढ़ता से डटा रहा। राजा सूरजमल तत्कालीन हिन्दुओं में अति निपुण, योग्य व चतुर सरदार था। बाजीराव राव पेशवा की यह सामयिक नीति थी कि शाह दुर्रानी को पराजित करने के लिए जाट राजा सूरजमल को किसी भी प्रकार मराठा पक्ष में रखा जाये। उसने सदाशिवराव भाऊ को यह सलाह दी थी कि वह सूरजमल से बकाया क्षतिपूर्ति की शेष रकम के लिए अधिक जोर नहीं डाले। अब्दाली के हाथों मराठों की दुर्दशा एवं दत्ताजी की मृत्यु का समाचार पाकर पेशवा को अत्यधिक दुःख हुआ और उसने अपने चचेरे भाई सदाशिवराव भाऊ को एक बड़ी सेना के साथ अब्दाली को भारत से निकालने के लिए भेजा। इस अभियान का औपचारिक नेतृत्व पेशवा के बड़े पुत्र सदाशिवराव को सौंपा गया। निस्संदेह सदाशिवराव एक बहादुर तथा योग्य सैनिक था परन्तु उसमें दम्भ की मात्रा अधिक व कूटनीति का पर्याप्त अभाव था। मराठों की लूटमार तथा बलात् चौथ वसूली से राजपूत सरदार पहले से मराठों के शत्रु बन चुके थे, इस कारण उनमें से कोई मराठों की सहायता के लिए आगे नहीं आया। प्रारम्भ में सूरजमल जाट की सहानुभूति मराठों के साथ थी। वह उत्तर भारत का एक शक्तिशाली राजा था। युद्ध नीति और मुगल सम्राट के प्रति व्यवहार के प्रश्न पर सदाशिवराव से मतभेद हो गया, जिसकी वजह से वह मराठों का साथ छोड़कर अपने राज्य में वापिस लौट आया। मराठे अकेले रह गये। फलस्वरूप पानीपत के तृतीय युद्ध में मराठे परास्त हो गये। पानीपत के संकट के बाद मराठों की युद्ध भूमि के बाहर जाट राजा ने भरपूर सहायता की। जाट राजा द्वारा दिया गया वह सहयोग एक दूरदर्शितापूर्ण कार्य तो था

ही, यह पूर्व में बिगड़े सम्बन्धों को सुधारने की दिशा में भी महत्वपूर्ण कदम था।

पानीपत का तृतीय युद्ध मराठा इतिहास का परिवर्तन बिन्दु कहा जा सकता है और वस्तुतः यह युद्ध मराठों के भाग्य की एक विभाजक रेखा है। पानीपत युद्ध ने भारतीय राजनैतिक क्षेत्रों में मराठा प्रतिष्ठा को ठेस पहुँचाई। वे मराठों जो अपने व अपने आश्रितों की रक्षा नहीं कर सके एक खोखले बांस की भाँति निशक्त समझे जाने लगे। उनका समस्त भारत पर राज्य करने का स्वप्न टूट गया। इसने न केवल मराठों की उत्तर भारतीय महत्वकांक्षाओं को एक दशक के लिए रोक दिया बल्कि उनकी संगठनात्मक दुर्बलताओं को स्पष्ट कर दिया। अब सूरजमल की शक्ति में काफी वृद्धि हो गई थी।

राजनैतिक महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति के लिए सूरजमल को अच्छा अवसर प्राप्त हो गया। फलतः उसने शीघ्र ही आगरा विजय कर फर्रूखनगर को भी कब्जे में किया तथा नजीबुद्दौला से संघर्ष के लिए प्रस्थान किया। नजीबुद्दौला के घेराबन्दी में ही सूरजमल का नजीबुद्दौला के सैनिकों द्वारा बध कर दिया गया। अपने पिता की मृत्यु का बदला लेने के लिए जवाहर सिंह ने मराठा सरदार मल्हारराव होल्कर से सहायता के लिए सन्धि की। मल्हारराव होल्कर ने 20,000 घुड़सवार, 22 लाख रूपये के भुगतान पर देने को तैयार हुआ। मल्हारराव होल्कर जाटों से किये सहायक सन्धि पर ईमानदार नहीं था जाटों द्वारा नजीबुद्दौला की घेराबन्दी में उसके समर्पण के दिन नजदीक थे तभी होल्कर ने निर्णायक युद्ध नहीं होने दिया। जिसके उपरान्त जवाहर सिंह को नजीबुद्दौला से सन्धि कर घेरा उठाना पड़ा। यदि निर्णायक युद्ध कराने में

मल्हारराव ढुलमुल नीति नहीं अपनाता तो जाट जिन्होंने पानीपत के युद्ध के उपरान्त मराठों की चिरस्मरणीय सहायता की थी मराठों के सदैव के लिए अटल सहयोगी बन जाते। जाट राज्य मल्हारराव होल्कर के विश्वासघात से जवाहरसिंह को अप्रिय समझौता नजीबुद्दौला से करना पड़ा। जिसके लिए उसे अपार कष्ट हुआ। नजीबुद्दौला से मल्हारराव होल्कर को प्राप्त अल्प धनराशि से न तो उसकी प्रतिष्ठा में वृद्धि हुई और न कोई क्षेत्र की प्राप्ति ही हुई। होल्कर के कृत्य ने जवाहर सिंह के मन में मराठों के प्रति घृणा का भाव भर दिया।

जवाहरसिंह अब मराठों को उत्तर भारत से बाहर निकालने के प्रयास में जुट गया। इसके लिए उसने सिखों व गोहद के जाट राणा को साथ लेकर एक मराठा विरोधी संघ तैयार किया। उत्तर भारत में मराठों के विरूद्ध जवाहरसिंह के नेतृत्व में बनने वाले इस नए समीकरण ने पेशवा माधवराव को चिन्तित कर दिया। पेशवा ने रघुनाथ को एक शक्तिशाली सेना के साथ उत्तर भारत में मराठों के विरूद्ध चल रही कार्यवाहियों को नियंत्रित करने हेतु भेजा। किन्तु अहमदशाह अब्दाली के नवम्बर, 1766 ई0 में भारत की ओर प्रस्थान की खबरों से आसन्न संकट से त्राण हेतु जाट और मराठे पुनः सन्धि करने को विवश हुए। यह सन्धि अल्पकालीन युद्ध विराम से अधिक और कुछ न थी। जून, 1767 ई0 में अहमदशाह अब्दाली जब पंजाब से ही वापिस अपने देश लौट गया। जवाहरसिंह ने अपनी मराठा विरोधी युद्ध योजना पुनः क्रियान्वित करना शुरू किया। मराठों के विरूद्ध जवाहरसिंह की निरन्तर विजयों ने पूना में पेशवा को चिन्तित कर दिया और सितम्बर 1767 ई0 में मराठा अधिकारियों ने जवाहरसिंह से सन्धि कर ली। समझौता हो जाने पर जवाहरसिंह चम्बल पार

कर वापस भरतपुर लौट गया। जवाहर सिंह की आगे की महत्वाकांक्षी योजनाओं का 1 जून 1768 ई0 में धोखे से हुई उनकी हत्या ने अन्त कर दिया। जवाहर सिंह के अल्प शासनकाल में जवाहरसिंह की मराठों से तीन बार सन्धि हुई किन्तु पारस्परिक अविश्वास और स्वार्थपरता के लिए उसमें स्थायित्व न रह सका।

मुगल साम्राज्य को चुनौती देने वाले मराठे व जाटों का उत्थान इस काल का एक आशाजनक व सकारात्मक पहलू था, जिससे भारतीय राजनीति में कुछ आशाजनक किरण दिखायी दे रही थी किन्तु यह तभी सम्भव था जबकि दोनों शक्तियाँ परस्पर एकता से काम करती। दोनों ही शक्तियाँ राजनीतिक परिस्थितियों के उतार–चढ़ाव से परिचित ये बदलते घटनाक्रम में इन्होंने आपसी सहयोग भी किया परन्तु राजनीतिक अकुशलता व पारस्परिक अविश्वास ने इनकी दूरदर्शिता की दृष्टि को धूमिल कर दिया। वर्तमान राजनीतिक व्यवस्था को समझने में यह न केवल असफल हुए बल्कि इनके स्वार्थपरक राजनीतिक निर्णयों ने सब कुछ नष्ट कर दिया। राष्ट्रीय एकता एवं सहयोगपरक राजनीतिक व्यवस्था के विपरीत जाट व मराठों के परस्पर अविश्वास की रणनीति ने भारत को विदेशी आक्रमणकारियों का शिकारगाह बना दिया, जिसने अठारहवीं शताब्दी के विकेन्द्रीकृत राजतंत्र के विपरीत एकीकृत ब्रिटिश सत्ता के मार्ग को प्रशस्त किया।

****

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

प्रकाशित एवं अनुदित ग्रन्थ–

(क) हिन्दी व राजस्थानी (समकालीन)–

1.	अहवाल–ए–जंग–ए–भाऊ व अहमदशाह दुर्रानी	:	काशीराज, एच0जी0 रालिन्सन अंग्रेजी अनुवाद एन एकाउन्ट ऑफ दी लास्ट वैटल ऑफ पानीपत बम्बई यूनिवर्सिटी 1926 ई0
2.	अहवाल–ए–नजीबुद्दौला	:	मुंशी बिहारीलाल, जदुनाथ सरकार कृत अंग्रेजी अनुवाद ''इस्लामिक कल्चर'' के अक्टूबर 1936 ई0 के अंक में प्रकाशित
3.	अहवाल–ए–नजीबुद्दौला	:	सैय्यद नुरूद्दीन हसन, जदुनाथ सरकार कृत, अंग्रेजी अनुवाद ''इस्लामिक कल्चर'' के जुलाई व अक्टूबर 1933 ई0 व अप्रैल 1934 ई0 के अंकों में क्रमशः प्रकाशित
4.	इमाद–उस–सादात	:	मीर गुलाम अली, लिथोग्राफ मुद्रित, नवल किशोर प्रेस, लखनऊ 1897 ई0
5.	तारीख–ए–शाह आलम	:	मुन्नालाल, जदुनाथ सरकार कृत अंग्रेजी अनुवाद महाराष्ट्र अभिलेखागार, बम्बई से 1970 ई0 में प्रकाशित।
6.	पार्शियन हिस्ट्री ऑफ जाट्स	:	फ्रैज गोटजियब, जदुनाथ सरकार कृत अंग्रेजी अनुवाद बंगाल पास्ट

		एण्ड प्रेजेंट के जुलाई–दिसम्बर 1955 के अंक में प्रकाशित।
7. सियार–उल–मुतखिरीन	:	गुलाम हुसैन, फ्रांसीसी मुस्लिम हाजी मुस्तफा द्वारा तीन जिल्दों में अंग्रेजी अनुवाद।
8. हालात–ए–अमदान–ए–अहमद शाह दुर्रानी दर हिन्दुस्तान दर	:	गुलाम हुसैन सामिन, विलियम इरविन कृत अंग्रेजी अनुवाद इण्डियन एण्टीक्वेरी 1907 ई0 में प्रकाशित।
9. जोधपुर राज्य की ख्यात	:	अप्रकाशित, सीतामऊ, संग्रह।
10. सवाई जयसिंह चरित्र	:	कृति आत्माराम, सम्पा0 गोपालनारायण बहुरा, सवाई मानसिंह। संग्रहालय, जयपुर 1979 ई0 में प्रकाशित।
11. सुजान चरित्र	:	कवि सूदन, काशी नगरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित।
12. सुजान विलास	:	कवि सोमनाथ, पा0लि0 जिला पुस्तकालय भरतपुर।
13. सूर्यमल्ल मिश्रण	:	वंश भास्कर जोधपुर।

(ख) मराठी–

1. जी0एस0 सरदेसाई	:	हिंगणे दफ्तर जिल्द 2, पूना (1947 ई0)
2. भाऊसाहेवांची बखर	:	कृष्णाजी शामराव, सम्पादक काशीनाथ नारायण साने, आर्य भूषण प्रेस पूना से 1922 ई0 में मुद्रित।

3. भाऊसाहेवांची दूसरी बखर : सीतामऊ संग्रह, वि0 एठले द्वारा 1905 ई0 में संकलित।

4. भाऊसाहेब यांची कैफियत : काशीनाथ नारायण साने, 1887 ई0 में प्रकाशित।

5. सिलेक्शन फ्राम पेशवा दफ्तर : गोविन्द सखाराम सरदेसाई द्वारा सम्पादित व 45 जिल्दों बम्बई से प्रकाशित।

6. होल्कर शाहीच्या इतिहासाची साधनें : सम्पा0 वा0 वा0 ठाकुर दो भागों में होल्कर, गवर्नमेन्ट प्रेस इन्दौर से 1944 में प्रकाशित।

(ग) फारसी–

अप्रकाशित ग्रन्थ–

1. अखबार–ए–मुहब्बत : नवाब मुहब्बत खान

2. चहार–गुल्जार–ए–शुजाई : हरिचरनदास सरकार संग्रह, कलकत्ता

3. तारीख–ए–अहमदशाही : अज्ञात सरकार संग्रह, कलकत्ता

4. तारीख–ए–आलमगीर सानी : अज्ञात सरकार संग्रह, कलकत्ता

5. दस्तूर कौमवार : अप्रकाशित राज0 अभिलेखागार, जयपुर

6. फतुहात–ए–आलमगीरी : ईश्वरदास नागर, सीतामऊ संग्रह

7. वाकया–ए–शाहआलम सानी : अज्ञात सरकार संग्रह, रा0पु0 कलकत्ता (दिल्ली क्रॉनिकल्स के नाम से ज्ञात)

(घ) फ्रैंच–

1.	एन एकाउण्ट ऑफ दी जाट किंगड़म	:	फादर वैण्डल, रघुवीर लाइब्रेरी सीतामऊ।
2.	मेमॉयर्स ऑफ कोम्पटे डी मौडव	:	जदुनाथ सरकार द्वारा अंग्रेजी में आंशिक अनुवाद बंगाल पास्ट एण्ड प्रेजन्ट जि0 51 (1936) में प्रकाशित
3.	मेमॉयर्स ऑफ ली नवाब रेनें मैडक	:	जदुनाथ सरकार द्वारा अंग्रेजी में आंशिक अनुवाद बंगाल पास्ट एण्ड प्रेजन्ट जि0 52 व 53 में प्रकाशित
4.	मेम्बार द लोरिजीन एक्वास्मा एतेता प्रेजांद पुईसांस दे जाट्स दॉ हिन्दोस्तान	:	फादर फ्रांसिस जेवियर वैण्डल, अप्रकाशित सरकार संग्रह रा0पु0 कलकत्ता।
5.	स्टोरिया डी मोडोर	:	निकोलाई मनूची, विलियम इरविन द्वारा चार भागों में इसका अंग्रेजी अनुवाद 1907–1908 ई0 में प्रकाशित।

(ङ) अंग्रेजी (अप्रकाशित राष्ट्रीय अभिलेखागार, दिल्ली)

1. सिलक्ट कमेटी प्रोसीडिंग्स, जि0 8, 1760–68।

(च) सहायक ग्रन्थ सूची (अंग्रेजी व हिन्दी)–

1.	अब्दुल रशीद	:	नजीबुद्दौला, अलीगढ़ 1952 ई0।
2.	अमिता चौधरी	:	भरतपुर राज्य एवं ईस्ट इण्डिया कम्पनी एक अध्ययन (1803–1857 ई0), क्लासिक पब्लिकेशन्स, जयपुर,

2000

3. आर्शीवादी लाल श्रीवास्तव : दि फर्स्ट टू नवाब्स ऑफ अवध, शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी, आगरा 1954 ई0।

4. आर्शीवादी लाल श्रीवास्तव : मुगलकानीन भारत, शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी, आगरा प्रथम संस्करण 1953 ई0।

5. इलियट व डाउसन : भारत का इतिहास, आठ भाग (हिन्दी अनुवाद) भाग (1) द्वितीय संस्करण, अन्य सभी भाग प्रथम संस्करण, शिवलाल एण्ड कम्पनी, आगरा 1954 ई0।

6. ईश्वर दास नागर : फतूहात–ए–आलमगीरी, रघुवीर लायब्रेरी, सीतामऊ।

7. उपेन्द्र नाथ शर्मा : जाटों का नवीन इतिहास, मंगल प्रकाशन, जयपुर 1977 ई0।

8. ए0 एच0 बिगले : जाट्स एण्ड गुर्जरस, एम्स पब्लिकेशन नई दिल्ली, 1978 ई0।

9. एच0जी0 कीने : दि पॉलिटिकल सिटम ऑफ दि जाट्स ऑफ नार्थन इण्डिया, 1966 ई0।

10. ए0 एल0 श्रीवास्तव : नवाब शुजाउद्दौला जिल्द 1, 2, आगरा, 1961

11. एम0एन0 शर्मा : दि लाईफ एण्ड टाइम्स ऑफ बेगम समरू ऑफ सरधना, विभू प्रकाशन साहिबाबाद, 1985 ई0।

12.	एल0पी0 शर्मा	: मध्यकालीन भारत (1000 ई0–1761 ई0), लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा–3
13.	एस0सी0 बनर्जी एवं डी0के0 घोष द्वारा सम्पादित	: ए कॉम्परिहेन्सिव हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, खण्ड–9, द इण्डियन हिस्ट्री कांग्रेस के तत्वाधान में प्रकाशित पीपॅल्स पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, 1978।
14.	एस0आर0 शर्मा	: भारत में मुगल साम्राज्य, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।
15.	कालिकारंजन कानूनगो	: हिस्ट्री ऑफ जाट्स, दिल्ली 1982 ई0।
16.	कान्ता नागोरी व एस0एल0	: नागोरी : मराठों का इतिहास, सबलाइम पब्लिकेशन, जयपुर।
17.	गंगा सिंह	: यदु वंश भरतपुर 1971 ई0।
18.	गण्डा सिंह	: अहमदशाह दुर्रानी, एशिया पब्लिशिंग हाऊस बम्बई 1959 ई0।
19.	गोकुल चन्द दीक्षित	: वृजेन्द्र भास्कर, हिन्दु धर्म संरक्षिणी सभा, आगरा वि0स0 1983।
20.	गौरीशंकर हीराचन्द ओझा	: जोधपुर राज्य का इतिहास, दो भाग, वि0स0 1995 व 1998 वैदिक मन्त्रालय, अजमेर।
21.	गोपीनाथ शर्मा	: राजस्थान का इतिहास, शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी, आगरा
22.	ग्राण्ट डफ	: हिस्ट्री ऑफ दि मराठाज आर0 कैम्ब्रे एण्ड कम्पनी, कलकत्ता 1918 ई0।

23. जदुनाथ सरकार : (1) मुगल साम्राज्य का पतन (हिन्दी अनुवाद) चार भाग, शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी, आगरा 1954 ई0।
(2) हिस्ट्री ऑफ दि जयपुर स्टेट, अप्रकाशित सीतामऊ संग्रह।

24. ज्वाला सहाय : (1) हिस्ट्री ऑफ भरतपुर ट्रिव्यूनस, प्रेस लाहौर, 1896 ई0।
(2) वाकया राजपूताना (उर्दू) तीन भाग, आगरा से 1878–79 ई0 में प्रकाशित।

25. जे0ए0 देवनीश : दि भवन्स एण्ड गार्डन पलैसेज ऑफ डीग, पायनियर प्रेस, इलाहाबाद 1902 ई0।

26. जी0एस0 वशिष्ठ : रिलेशन्स बिटवीन दी ईस्ट इण्डिया कम्पनी एण्ड भरतपुर आगरा, यूनिवर्सिटी।

27. जेम्स टॉड : एनल्स एण्ड इन्टिक्विटीज ऑफ राजस्थान तीन भाग, मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली 1971 ई0।

28. जदुनाथ सरकार : हिस्ट्री ऑफ औरंगजेब एम0सी0 सरकार एण्ड सन्स, कलकत्ता।

29. जदुनाथ सरकार : मआसीर–ए–आलमगीरी एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल, कलकत्ता 1947 ई0।

30. जी0एस0 सरदेसाई : मराठों का नवीन इतिहास, शिवलाल

अग्रवाल एण्ड कम्पनी आगरा, प्रथम दो भाग 1976 ई0।

31. जी0एच0 ओझा : जोधपुर राज्य का इतिहास, द्वितीय खण्ड, अजमेर 1941।

32. ठा0 देशराज : जाट इतिहास, बृजेन्द्र साहित्य समिति, आगरा 1934 ई0।

33. टी0एस0 शेजवल्कर : पानीपत 1761 कमल प्रकाशन इन्दौर प्रथम संस्करण।

34. नटवर सिंह : महाराज सूरजमल, जीवन और इतिहास (1707–1763 ई0), हिन्दी अनुवाद–वीरजी, प्रथम हिन्दी संस्करण, नई दिल्ली 1985 ई0।

35. नरेन्द्र सिंह : थ्री डिसाइसिव बैटल्स ऑफ जयपुर, जयपुर 1939 ई0।

36. पी0सी0 चान्दावत : महाराजा सूरजमल और उनका युग (1745–1763 ई0) जयपाल एजेन्सीज दहतोरा आगरा प्रथम संस्करण 1982।

37. फ्रैंकलिन : दि हिस्ट्री ऑफ दि रेन ऑफ शाह आलम इलाहाबाद, 1934 ई0 तृतीय संस्करण।

38. बी0एल0 ग्रोवर व यशपाल : आधुनिक भारत का इतिहास, एस0 चन्द एण्ड कम्पनी लि0 सोलहवाँ संस्करण, 2001, नई दिल्ली।

39. मनोहर सिंह राणावत : भरतपुर महाराजा जवाहर सिंह जाट, जोधपुर 1982 ई0।

40. मुकन्द वामनराव बार्वे : लाइफ ऑफ सूबेदार मल्हार राव होल्कर इन्दौर, 1930 ई0।

41. मोहनसिंह : वाकया–ए–होल्कर सरकार संग्रह रा0पु0 कलकत्ता।

42. राधारमण पाण्डेय : भरतपुर राज्य का संक्षिप्त इतिहास।

43. राम पाण्डे : भरतपुर अपटु 1826, रामा पब्लिकेशन हाऊस, जयपुर, प्रथम संस्करण 1970 ई0।

44. रघुवीर सिंह : पूर्व आधुनिक राजस्थान, पंचशील प्रकाशन जयपुर, प्रथम संस्करण 1990।

45. विलियम इर्विन : लेटर मुगल्स द्वितीय संस्करण कलकत्ता, 1922।

46. वूल्जले हेग : दि कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, जि0 IV एस0 चन्द एण्ड कम्पनी, दिल्ली, 1974 ई0।

47. विधाधर महाजन : आधुनिक भारत का इतिहास, एस0 चन्द एण्ड कम्पनी, लि0, नई दिल्ली, ग्यारहवाँ संस्करण, 2004।

48. शिवदत्त बारहट : जोधपुर राज्य का इतिहास, राज0 हिन्दी ग्रन्थ अकादमी A 26/2 विद्यालय मार्ग तिलक नगर, जयपुर द्वितीय संस्करण 1991।

49. सतीश चन्द्र : मध्यकालीन भारत भाग–दो, जवाहर पब्लिशर्स एवं डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली।

50. सतीश चन्द्र : पार्टीज एण्ड पालिटिक्स ऐट दी मुगल कोर्ट (1707 ई0–1740 ई0) अलीगढ़ विश्वविद्यालय, अलीगढ़, 1959 ई0।

51. सतीश चन्द : उत्तर मुगल कालीन भारत दि मैकमिलन कम्पनी आफ इण्डिया लि0, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 1980।

52. शेखर बंधोपाध्याय : पलासी से विभाजन तक, ओरियंट ब्लैकस्वॉन प्राइवेट लिमिटेड 2009।

53. सूर्यमल्ल मिश्रा : वंश भास्कर, राम श्याम प्रेस, जोधपुर।

54. हरबर्ट रिजले : दि पीपुल्स ऑफ इण्डिया, ओरियन्टलज बुक्स रीप्रिन्ट कॉरपोरेशन, दिल्ली 1969 ई0।

****